॥ ॐ नमः शिवाय ॥
1156
एकादश
रुद्र (शिव)
गीताप्रेस, गोरखपुर
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

नम्र निवेदन

सनातनधर्ममें पञ्चदेवोपासना अनादि कालसे चली आ रही है। सारे विश्वमें वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य सम्प्रदाय देखनेमें आते हैं, इनमें शैव अधिक हैं; क्योंकि पञ्चदेवोंमें शिव, शक्ति, गणेश—ये तीन तो भगवान् शिवके परिवारमेंसे ही हैं।

पुराणकारोंके अनुसार संसारमें सर्वाधिक भक्त भगवान् शिवके ही हैं; क्योंकि असुर भी शिवजीकी उपासना करते हैं। यहाँतक कि भूत-प्रेतादि भी शिवजीके ही परिवार माने जाते हैं, अर्थात् शिवजीकी उपासनामें सभीका स्थान है। क्यों न हो! भगवान् शिव कल्याणकारी जो ठहरे! यह चराचर—स्थावर-जङ्गम-जगत् जो भी देखनेमें आता है, वह सारा शिवका ही रूप है—

अन्तस्तमो बहिःसत्त्वस्त्रिजगत्पालको हरिः। अन्तःसत्त्वस्तमोबाह्यस्त्रिजगल्लयकृद्धरः ॥
अन्तर्बहीरजश्चैव त्रिजगत्सृष्टिकृद्विधिः। एवं गुणास्त्रिदेवेषु गुणभिन्नः शिवः स्मृतः ॥

अर्थात् तीनों लोकोंके पालन करनेवाले भगवान् हरि भीतरसे तमोगुणी हैं और बाहरसे सतोगुणी हैं। तीनों लोकोंका संहार करनेवाले भगवान् हर भीतरसे सतोगुणी हैं, पर बाहरसे तमोगुणी हैं। भगवान् ब्रह्मदेव जो तीनों लोकोंको उत्पन्न करते हैं, भीतर और बाहर उभयरूपमें रजोगुणी हैं और भगवान् परब्रह्म शिव तीनों गुणोंसे परे हैं। इसका रहस्य यह है कि सुखका रूप सतोगुण है, दुःखका रूप तमोगुण और क्रियाका रूप रजोगुण है। भगवान् विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं, इसलिये देखनेमें तो सृष्टि सुखरूप प्रतीत होती है; परन्तु भीतरसे अर्थात् वास्तवमें दुःखरूप होनेसे विष्णुभगवान्का कार्य बाहरसे सतोगुणी होनेपर भी तत्त्वतः तमोगुणी ही है। इसीलिये भगवान् विष्णुके वस्त्राभूषण सुन्दर और सात्त्विक होनेपर भी स्वरूप श्यामवर्ण है।

भगवान् शिव सृष्टिका संहार करते हैं। वे देखनेमें तो दुःखरूप हैं; पर वास्तवमें संसारको मिटाकर परमात्मामें एकीभाव कराना उनका सुखरूप है। इसीलिये भगवान् शिवका बाहरी शृङ्गार तमोगुणी होनेपर भी स्वरूप सतोगुणी है और उनका शीघ्र प्रसन्न होना भी जिसके कारण वे आशुतोष कहलाते हैं, सतोगुणका ही स्वभाव है।

भगवान् ब्रह्मदेव सदा सृष्टिका निर्माण ही किया करते हैं, इसलिये वे रक्तवर्ण हैं; क्योंकि क्रियात्मक स्वरूपको शास्त्रोंने रक्तवर्ण ही बतलाया है। अतः शिवजीकी उपासनाके अन्तर्गत भगवान् ब्रह्मा एवं विष्णुकी उपासना स्वतः आ जाती है। त्रिदेवोंमें परस्पर कार्यभेद नहीं है जो भेद दीखता है वह केवल लीलामात्र है।

शिवपुराणमें भगवान् शिवके परात्पर निर्गुण स्वरूपको 'सदाशिव', सगुण स्वरूपको 'महेश्वर', विश्वका सृजन करनेवाले स्वरूपको 'ब्रह्मा', पालन करनेवाले स्वरूपको 'विष्णु' और संहार करनेवाले स्वरूपको 'रुद्र' कहा गया है। रुद्रका दूसरा अर्थ यह भी है कि जो सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त करा दे—'रुजं दुःखं द्रावयतीति रुद्रः।'

समुद्र-मन्थनमें प्रयासरत देवताओं और असुरोंने अमृतकी अभिलाषासे जो अथक परिश्रम किया उसमें दैवयोगसे अमृत निकलनेके पूर्व हलाहल विष निकल आया। परिणामस्वरूप उस विषने देवताओं और असुरोंको ही नहीं बल्कि समस्त सृष्टिको ही भस्म करना प्रारम्भ कर दिया। समस्त ब्रह्माण्ड त्राहि-त्राहि कर क्रन्दन करने लगा। सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्माजी और सृष्टिके पालक श्रीविष्णुजी दोनों चिन्तित हो उठे। वे सोचने लगे कि आखिर इस भयंकर असामयिक प्रलयसे छुटकारा पानेका क्या उपाय हो? उपाय ढूँढ़नेमें असमर्थ वे दोनों अन्ततः भगवान् भूतभावन आशुतोष शङ्करकी शरणमें गये। भगवान् शङ्करने परमानन्दमें निमग्न होते हुए भी समस्त जीवोंके त्राणके लिये भयंकर विषको लोगोंके देखते-देखते अपने कण्ठमें धारण कर लिया। हलाहलको कण्ठमें धारण करते ही जगत्को परम शान्ति मिली।

गणपति-वाहन मूषक और शिव-भूषण सर्प वैरी होनेपर भी समन्वय-शक्तिसे साथ-साथ रहते हैं। शिव-भूषण सर्प और सेनापति-वाहन मयूरका भी वैर, नीलकण्ठके विष और चन्द्रमौलिके अमृतमें भी वैर, भवानी-वाहन सिंह और शिव-वाहन बैलमें भी वैर, कामको भस्म करके भी स्त्री रखनेमें परस्पर विरोध, शिवके तीसरे नेत्रमें प्रलयकी आग और सिर निरन्तर शीतल धारामयी गङ्गासे ठंडा, यह भी परस्पर विरोध, ऐसे दक्ष-जामाता राजनीतिज्ञ होनेपर भी भोले-भाले। परन्तु इस सहज परस्पर विरुद्धतामें भी नित्य सहज समन्वय! यह भूतभावन देवाधिदेव महादेवकी समन्वय-शक्तिका ही परिचायक है।

ऐसे भगवान् सदाशिवके जिस संहारक स्वरूपको रुद्र कहा गया है उसकी उपाधियाँ अनन्त हैं। उनकी गणना त्रिकालमें भी नहीं की जा सकती। ये सभी नीलकण्ठ ही रहते हैं। एकादश रुद्रोंकी कथा न केवल महाभारत और पुराणादिमें वर्णित है, अपितु उनका उल्लेख ऋग्वेदादिमें भी मिलता है।

एकादश रुद्रोंकी विभूति समस्त देवताओंमें विद्यमान है। वैसे तो भगवान् रुद्रदेवका सम्यक् वर्णन सामान्य मस्तिष्कसे परे है। फिर भी सर्वसाधारणको भी—शम्भु, पिनाकी, गिरीश, स्थाणु, भर्ग, सदाशिव, शिव, हर, शर्व, कपाली तथा भव—इन एकादश रुद्रोंका परिचय सुलभ हो जाय, इसी भावनासे प्रेरित होकर गीताप्रेसने श्रीरामसागर पाण्डेयद्वारा प्रस्तुत चित्ताकर्षक आवरणसहित सचित्र एकादश रुद्रोंका परिचय जनमानसतक पहुँचानेका एक लघु प्रयास किया है। आशा एवं विश्वास है कि शिवभक्तोंके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी—

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर। यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

—प्रकाशक

[1156] 1/A

SANDHYA

शम्भु

ब्रह्मविष्णुमहेशानदेवदानवराक्षसाः ।
यस्मात् प्रजज्ञिरे देवास्तं शम्भुं प्रणमाम्यहम्॥ (शैवागम)

'ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, दानव, राक्षस जिनसे उत्पन्न हुए तथा जिनसे सभी देवोंकी उत्पत्ति हुई, ऐसे भगवान् शम्भुको मैं प्रणाम करता हूँ।'

भगवान् रुद्र ही इस सृष्टिके सृजन, पालन और संहारकर्ता हैं। शम्भु, शिव, ईश्वर और महेश्वर आदि नाम उन्हींके पर्याय शब्द अर्थात् नाम हैं। श्रुतिका कथन है कि एक ही रुद्र हैं जो सभी लोकोंको अपनी शक्तिसे संचालित करते हैं, अतएव वही ईश्वर हैं; वही सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूपसे उनके ग्यारह पृथक्-पृथक् नाम श्रुति, पुराण आदिमें प्राप्त होते हैं। शतपथब्राह्मणके चतुर्दशकाण्ड (बृहदारण्यकोपनिषद्में) पुरुषके दस प्राण और ग्यारहवाँ आत्मा एकादश आध्यात्मिक रुद्र बताये गये हैं। अन्तरिक्षस्थ वायुप्राण ही हमारे शरीरमें प्राणरूप होकर प्रविष्ट है और वही शरीरके दस स्थानोंमें कार्य करता है, इसलिये उसे रुद्रप्राण कहते हैं। ग्यारहवाँ आत्मा भी रुद्र प्राणात्माके रूपमें जाना जाता है। आधिभौतिक रुद्र पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, यजमान, पवमान, पावक और शुचि नामसे कहे गये हैं। इनमें आदिके आठ शिवकी अष्टमूर्ति कहलाते हैं, शेष पवमान, पावक और शुचि घोररूप हैं। आधिदैविक रुद्र तारामण्डलोंमें रहते हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके भिन्न-भिन्न नाम तथा उत्पत्तिके भिन्न-भिन्न कारण मिलते हैं। इस प्रकार भगवान् रुद्र ही सृष्टिके आदि कारण हैं तथा सृष्टिके कण-कणमें विद्यमान हैं। '**एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः**' और '**असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्**' इस प्रकार एक रुद्र और असंख्यात रुद्रोंके वर्णन तन्त्र-ग्रन्थोंमें प्राप्त होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि एक रुद्र अधिनायक (मुख्य) है और शेष रुद्र उनकी प्रजा हैं। पुराणोंमें इनकी उत्पत्तिका कारण प्रजापतिके सृष्टि रच पानेकी असमर्थतापर उनके मन्यु (क्रोध) और अश्रुको बताया गया है। शिवपुराणमें, देवताओंके असुरोंसे पराजित हो जानेके बाद कश्यपकी प्रार्थनापर कश्यप और सुरभिके द्वारा इनके अवतारका वर्णन है। शैवागममें एकादश रुद्रोंका नाम—शम्भु, पिनाकी, गिरीश, स्थाणु, भर्ग, सदाशिव, शिव, हर, शर्व, कपाली तथा भव बतलाया गया है।

एक समय आनन्दवनमें रमण करते हुए आदि एवं प्रथम रुद्र भगवान् शम्भुके मनमें एक-से-अनेक होनेकी इच्छा हुई। फिर उन्होंने अपने वाम भागके दसवें अंगपर अमृत मलकर विष्णुको तथा दक्षिण भागसे ब्रह्माको उत्पन्न किया। कुछ समयके बाद रुद्रमायासे मोहित होकर विष्णु और ब्रह्माने अपने कारणकी खोज की, तब एक आदि-अन्तहीन ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन हुआ; जिसके ओर-छोरका पता लगानेमें दोनों असमर्थ रहे। विष्णु और ब्रह्माके स्तुति करनेपर अपनी शक्ति उमादेवीके साथ भगवान् शम्भु प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मासे कहा कि मेरी आज्ञासे तुम सृष्टिका निर्माण करो और विष्णु उसका पालन करें। मेरे अंशसे प्रकट होनेवाले रुद्रदेव इस सृष्टिका संहार करेंगे। मैं ही इस सृष्टिका आदि कारण हूँ तथा तुम दोनोंके साथ रुद्र और सम्पूर्ण देव, दानव एवं राक्षसोंका सृजनकर्ता हूँ। भगवान् विष्णु मेरे बायें अंगसे तथा तुम दाहिने अंगसे प्रकट हुए हो, उसी प्रकार रुद्र मेरे हृदयसे प्रकट होंगे। ऐसा कहकर भगवान् शम्भु अन्तर्धान हो गये।

प्रथम रुद्र भगवान् शम्भुकी आधिभौतिक पृथ्वी-मूर्ति एकाम्रनाथ (क्षिति-लिङ्ग)-के नामसे शिवकाञ्चीमें है। इस दिव्य विग्रहपर जल नहीं चढ़ाया जाता है, अपितु इसे चमेलीके तेलसे स्नान कराया जाता है। प्रति सोमवारको भगवान्की सवारी निकलती है। भगवती पार्वतीने शिवकाञ्चीमें इस क्षिति-लिङ्गकी प्रतिष्ठा करके शम्भु—रुद्रकी उपासना की थी। इस लिङ्गके दर्शनमात्रसे ऐश्वर्यकी सिद्धि एवं अक्षय-कीर्तिकी प्राप्ति होती है।

भगवान् शम्भुका नन्दीश्वर अवतार

पूर्वकालमें शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। पितरोंके आदेशसे उन्होंने अयोनिज एवं मृत्युहीन पुत्रकी प्राप्तिके लिये पहले इन्द्र और उसके बाद इन्द्रके कहनेपर भगवान् शम्भुकी प्रसन्नताके लिये कठिन तपस्या की। उनके तपसे प्रसन्न होकर महादेवने प्रकट होकर उनसे वर माँगनेके लिये कहा। तब शिलाद मुनिने उनसे कहा—'प्रभो! मैं आपके ही समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूँ।'

शिवजीने कहा—'तपोधन विप्र! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके साथ मुनियों एवं देवताओंने मेरे अवतार धारण करनेके लिये तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी। इसलिये समस्त जगत्का पिता होते हुए भी मैं तुम्हारे अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतार लूँगा तथा मेरा नाम नन्दी होगा।' ऐसा कहकर कृपालु शिव अन्तर्धान हो गये। कुछ समय बाद एक दिन यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ शिलाद मुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञ-क्षेत्र जोत रहे थे। उसी समय उनके श्वेदबिन्दुसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बालक युगान्तकालीन अग्निके समान प्रभावान् था। शिलाद मुनिने जब उस बालकको सूर्यके समान प्रभाशाली, त्रिनेत्र, जटा-मुकुटधारी, त्रिशूल इत्यादि आयुधोंसे युक्त, चतुर्भुज रुद्ररूपमें देखा तो वे महान् आनन्दमें निमग्न हो गये। शिलादकी कुटियामें पहुँचकर वह बालक रुद्ररूपको त्याग करके मनुष्यरूप धारण कर लिया। पुत्रवत्सल शिलाद मुनिने उस बालकका जातकर्मादि संस्कार करके उसका नाम नन्दी रखा। पाँचवें वर्षमें उन्होंने नन्दीको सभी वेदों तथा शास्त्रोंका अध्ययन कराया। सातवाँ वर्ष पूरा होनेपर मित्र और वरुण नामके मुनि शिवजीकी प्रेरणासे उस बालकको देखने आये। उन्होंने शिलाद मुनिसे कहा कि यद्यपि तुम्हारा पुत्र नन्दी सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी विद्वान् है लेकिन अब उसकी आयु मात्र एक ही वर्ष शेष बची है। अपने पिताको चिन्तित देखकर नन्दीने कहा—'पिताजी! आप चिन्तित न हों। यमराज भी मुझे मारना चाहें तो भी मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं भगवान् शम्भुके भजनके प्रभावसे मृत्युको जीत लूँगा।' नन्दीने इस प्रकार कहकर अपने पिताको सान्त्वना दी तथा भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये तपस्या करनेके लिये वनकी राह ली।

वनमें पहुँचकर नन्दी अपने हृदयमें तीन नेत्र तथा दस भुजा और पाँच मुखवाले भगवान् सदाशिवका ध्यान तथा रुद्र-मन्त्रका जप करने लगा। नन्दीको अपने ध्यान और जपमें तल्लीन देखकर उमासहित महादेव प्रकट हुए। उन्होंने नन्दीसे कहा—'शिलादनन्दन! तुमने बड़ा ही उत्तम तप किया। मैं तुम्हारी इस उत्तम तपस्यासे परम सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लो।' महादेवजीके इस प्रकार कहनेपर नन्दीने भगवान् शंकरकी बड़े ही प्रेमसे स्तुति की और भावविभोर होकर उनके चरणोंमें लेट गया।

भगवान् शम्भुने अपने चरणोंमें पड़े हुए नन्दीको उठाकर कहा—'वत्स नन्दी! उन दोनों विप्रोंको मैंने ही भेजा था। तुम्हें मृत्युका भय कहाँ; तुम तो मेरे ही समान हो। तुम अजर, अमर, दुःखरहित और अक्षय होकर मेरे गणनायक बनोगे। तुममें मेरे ही समान बल होगा और मेरे पार्श्वभागमें स्थित रहोगे। मेरी कृपासे जन्म, जरा और मृत्यु तुमपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे।' यों कहकर कृपासागर शम्भुने अपने गलेमें पड़ी हुई कमलकी माला उतारकर नन्दीके गलेमें डाल दी। उस शुभ मालाके गलेमें पड़ते ही नन्दी तीन नेत्र तथा दस भुजाओंसे सम्पन्न हो गया तथा दूसरे शंकर-सा प्रतीत होने लगा। उसके बाद भगवान् शम्भुने बड़े ही प्रेमसे नन्दीका अपने गणाध्यक्षके पदपर अभिषेक किया।
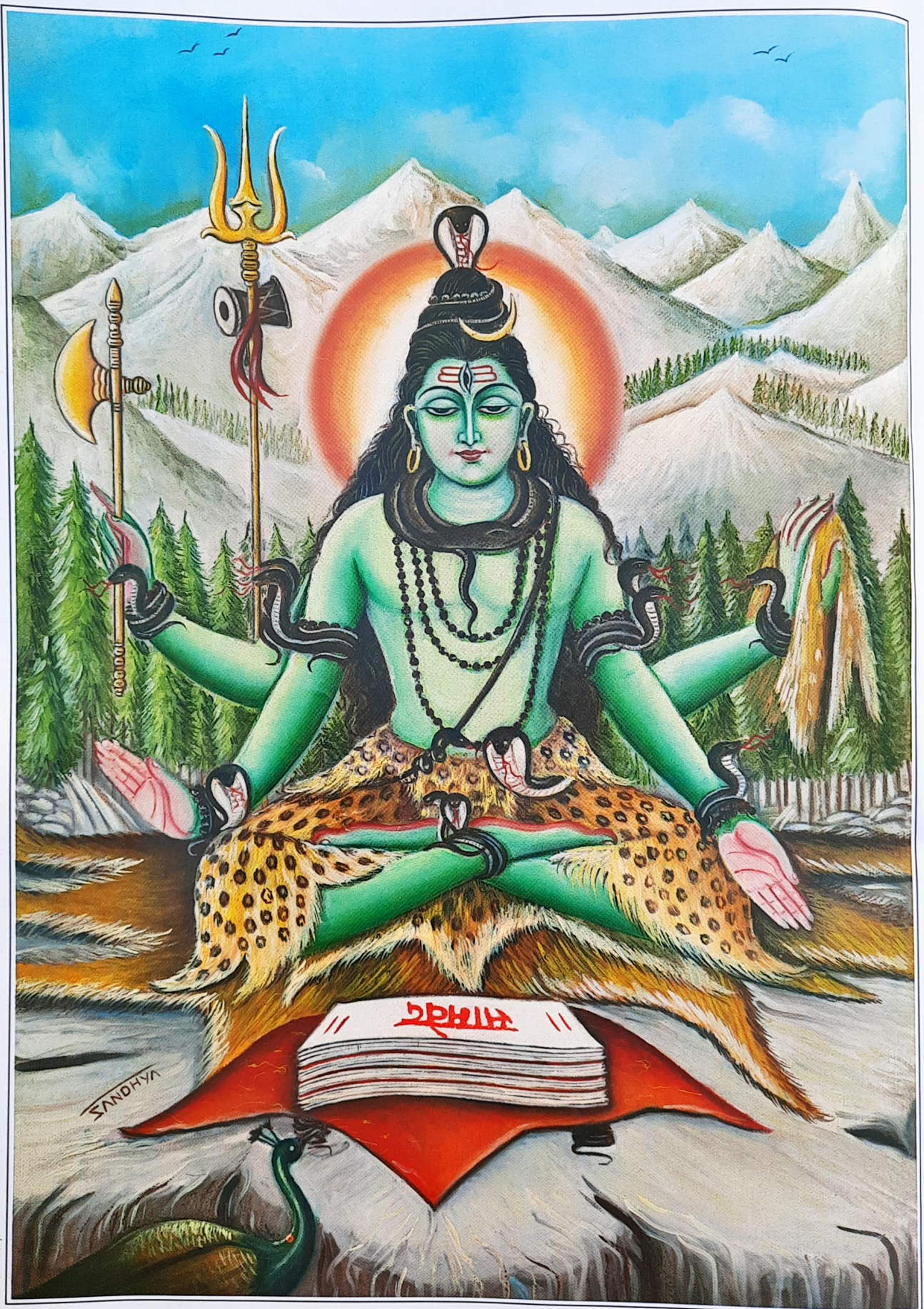
पिनाकी

क्षमारथसमारूढं ब्रह्मसूत्रसमन्वितम्।
चतुर्वेदैश्च सहितं पिनाकिनमहं भजे॥ (शैवागम)

'क्षमारूपी रथपर आरूढ़, ब्रह्मसूत्रसे समन्वित, चारों वेदोंको धारण करनेवाले भगवान् पिनाकीको मैं भजता हूँ।'

शैवागममें दूसरे रुद्रका नाम पिनाकी है। श्रीब्रह्माजी नारदसे कहते हैं कि 'जब हमने एवं भगवान् विष्णुने शब्दमय शरीरधारी भगवान् रुद्रको प्रणाम किया, तब हम लोगोंको ॐकारजनित मन्त्रका साक्षात्कार हुआ। तत्पश्चात् 'ॐ तत्त्वमसि' यह महावाक्य दृष्टिगोचर हुआ। फिर सम्पूर्ण धर्म और अर्थके साधक गायत्री-मन्त्रका दर्शन हुआ। उसके बाद मुझ ब्रह्माके भी अधिपति करुणानिधि भगवान् पिनाकी सहसा प्रकट हुए। चारों वेद पिनाकी रुद्रके ही स्वरूप हैं। भगवान् पिनाकी रुद्रको देखकर भगवान् विष्णुने पुनः उनकी प्रिय वचनोंद्वारा स्तुति की। भगवान् पिनाकीने प्रसन्न होकर सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको श्वासरूपसे वेदोंका उपदेश किया। उसके बाद उन्होंने श्रीहरिको अपना गुह्यज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्मा पिनाकीने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया। वेदका ज्ञान प्राप्त करके और कृतार्थ होकर हम दोनोंने पिनाकी रुद्रको पुनः नमस्कार किया।'

भगवान् पिनाकी रुद्रने नारायण-देवसे कहा—'मैं तुम दोनोंकी भक्तिसे परम प्रसन्न हूँ और तुम्हें मनोवाञ्छित वर देता हूँ। विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणों अथवा कार्योंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। वास्तवमें मैं सदा निष्कल हूँ। त्रिदेवोंमें कोई भेद नहीं है। भेद माननेवाले अवश्य ही बन्धनमें पड़ते हैं। मैं ही सत्य, ज्ञान और अनन्त ब्रह्म हूँ। ऐसा जानकर सदा मेरे यथार्थ स्वरूपका चिन्तन करना चाहिये।' इस प्रकार अपने दूसरे स्वरूप पिनाकी रुद्रके रूपमें विष्णु और ब्रह्माको भगवान् रुद्रने वेदोंका उपदेश किया और अन्तर्धान हो गये।

आधिभौतिक रुद्रके रूपमें दूसरे रुद्र पिनाकीकी जलमूर्ति दक्षिण भारतके मद्रास प्रान्तके त्रिचिनापल्लीमें श्रीरंगम्से एक मीलकी दूरीपर स्थित है। इसे जलतत्त्वलिङ्ग अथवा जम्बुकेश्वर लिङ्गके नामसे जाना जाता है। लिङ्गमूर्तिके नीचेसे बराबर जल ऊपर आता रहता है। इस मन्दिरके पीछे एक चबूतरेपर जामुनका एक प्राचीन वृक्ष है, इसी वृक्षके कारण इस शिवलिङ्गका नाम जम्बुकेश्वर पड़ा। यहाँ पहले जामुनके अनेक वृक्ष थे। एक ऋषि यहाँ भगवान् शिवकी आराधना करते थे। जम्बूवनमें तपस्या तथा निवासके कारण वे जम्बू ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हो गये थे। उनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें दर्शन दिया और उनकी प्रार्थनापर यहाँ दूसरे रुद्रकी जलमूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। कहा जाता है कि आदि शंकराचार्यने भी इन्हीं दूसरे पिनाकी रुद्रकी जलमूर्तिकी आराधना करके ज्ञान प्राप्त किया था।

ऐसी कथा है कि जब जामुनके पत्ते शिवलिङ्गपर गिरा करते थे, तब उसे बचानेके लिये एक मकड़ी शिवलिङ्गके ऊपर प्रतिदिन जाला बना देती थी। एक हाथी अपनी सूँड़में जल लाकर शिवलिङ्गका अभिषेक किया करता था। भगवान्‌की मूर्तिपर मकड़ीका जाला देखकर हाथीको बुरा लगता था और इधर बार-बार पानी डालकर जाला बहा देनेसे मकड़ीको भी बुरा लगता था। हाथीने एक दिन मकड़ीको मार डालनेके लिये सूँड़ बढ़ाया तो मकड़ी हाथीके सूँड़में चली गयी। फलतः दोनों मर गये। दोनोंके भाव शुद्ध होनेसे भगवान् शंकरने उन्हें मुक्ति प्रदान की।

शिवजीका शुचिष्मतीके गर्भसे गृहपतिरूपमें अवतार

पूर्वकालमें नर्मदा नदीके रमणीय तटपर नर्मपुर नामका एक नगर था। वहाँ विश्वानर नामके एक मुनि निवास करते थे। वे परम पुण्यात्मा, शिवभक्त तथा जितेन्द्रिय थे। उनका गृहस्थ-जीवन परम सुखमय था। बहुत समयतक गृहस्थीका सुख भोगनेके बाद एक दिन उनकी पतिव्रता भार्या शुचिष्मतीने उनसे कहा—'स्वामी! स्त्रियोंके लिये आनन्दप्रद जितने भी भोग हैं, उन सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग लिया। मेरे मनमें चिरकालसे एक अभिलाषा है। मैं आपसे भगवान् महेश्वर-सरीखा एक परम तेजस्वी पुत्र चाहती हूँ। कृपा करके आप मेरी इस इच्छाको पूर्ण करें।'
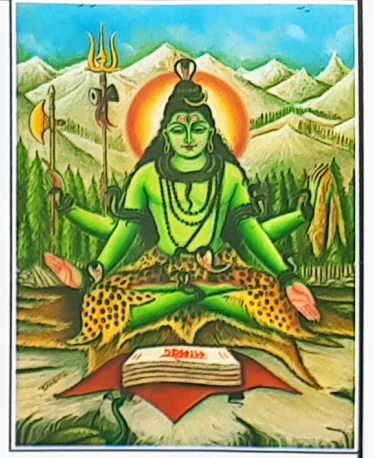
पत्नीकी बात सुनकर क्षणभरके लिये विश्वानर समाधिस्थ हो गये। वे अपने हृदयमें विचार करने लगे—'अहो! मेरी इस पत्नीने कैसा दुर्लभ वर माँगा है। ऐसा लगता है कि पिनाकी भगवान् रुद्रने ही इसके मुखमें बैठकर वाणीरूपसे यह बात कही है। वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं।' ऐसा विचारकर विश्वानर अपनी पत्नीको आश्वासन देनेके बाद वाराणसी गये और कठिन तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरके वीरेशलिङ्गकी आराधना करने लगे। तेरहवें मासमें वह ज्यों ही गंगा-स्नान करके वीरेश-शिवलिङ्गके सन्निकट पहुँचे, त्यों ही उन्हें शिवलिङ्गके मध्यमें एक अष्टवर्षीय बालक दिखायी दिया। उसके मस्तकपर पीले रंगकी जटा सुशोभित थी तथा मुखपर मुस्कान खेल रही थी। भस्मसे विभूषित वह अलौकिक बालक श्रुतिसूक्तोंका पाठ कर रहा था। उसे देखकर विश्वानर मुनि कृतार्थ हो गये और उनके शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उन्होंने अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्योंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति की। बालरूप भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उनसे कहा—'महामते! अब निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ। मैं समय आनेपर तुम्हारी पत्नीकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा। मेरा नाम गृहपति होगा। मैं परम पावन तथा समस्त देवताओंका प्रिय होऊँगा।'

विश्वानर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको प्रणाम करके अपने घर लौट आये। समय आनेपर समस्त अरिष्टोंके विनाशक तथा तीनों लोकोंके लिये सुखदायक भगवान् रुद्रका शुचिष्मतीके गर्भसे अवतार हुआ। ब्रह्माजीने स्वयं विश्वानरके घर जाकर उस दिव्य बालकका जातकर्म-संस्कार किया और उसका नाम गृहपति रखा। विश्वानरने यथासमय बालकके सब संस्कार करते हुए उसे विधिपूर्वक वेदाध्ययन कराया। नवाँ वर्ष आनेपर गृहपतिको देखनेके लिये देवर्षि नारद पधारे। स्वागतोपरान्त उन्होंने कहा—'मुनि विश्वानर! तुम्हारा यह पुत्र परम भाग्यवान् है, किन्तु मुझे आशङ्का है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर बिजली अथवा अग्निका भय आयेगा।'

अपने पिताको चिन्तित देखकर गृहपतिने उनकी आज्ञासे शिव-आराधनाके लिये काशी जानेका निश्चय किया। वे काशी पहुँचनेके बाद नित्य गंगाजलसे पूर्ण एक सौ आठ कलशोंद्वारा भगवान् शंकरका अभिषेक तथा शिवमन्त्रका जप करने लगे। जन्मसे बारहवाँ वर्ष आनेपर इन्द्र प्रकट होकर बोले—'विप्रवर! अपनी इच्छानुसार वर माँगो।' गृहपतिने कहा कि आप अहल्याका सतीत्व नष्ट करनेवाले पर्वतशत्रु इन्द्र ही तो हैं, आप जाइये; मैं पशुपतिके अतिरिक्त किसी अन्य देवसे वर नहीं चाहता।' इसपर क्रोधित होकर इन्द्र अपने वज्रसे उन्हें डराने लगे, जिससे गृहपति मूर्च्छित हो गये। फिर भगवान् शंकरने प्रकट होकर कहा—'वत्स! मेरे भक्तपर इन्द्रकी कौन कहे, यम भी दृष्टि नहीं डाल सकते। आजसे मैं तुम्हें अग्निपद प्रदान करता हूँ। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिङ्ग काशीमें अग्नीश्वर नामसे प्रसिद्ध होगा।'

[1156] 2/A

[1156] 2/B
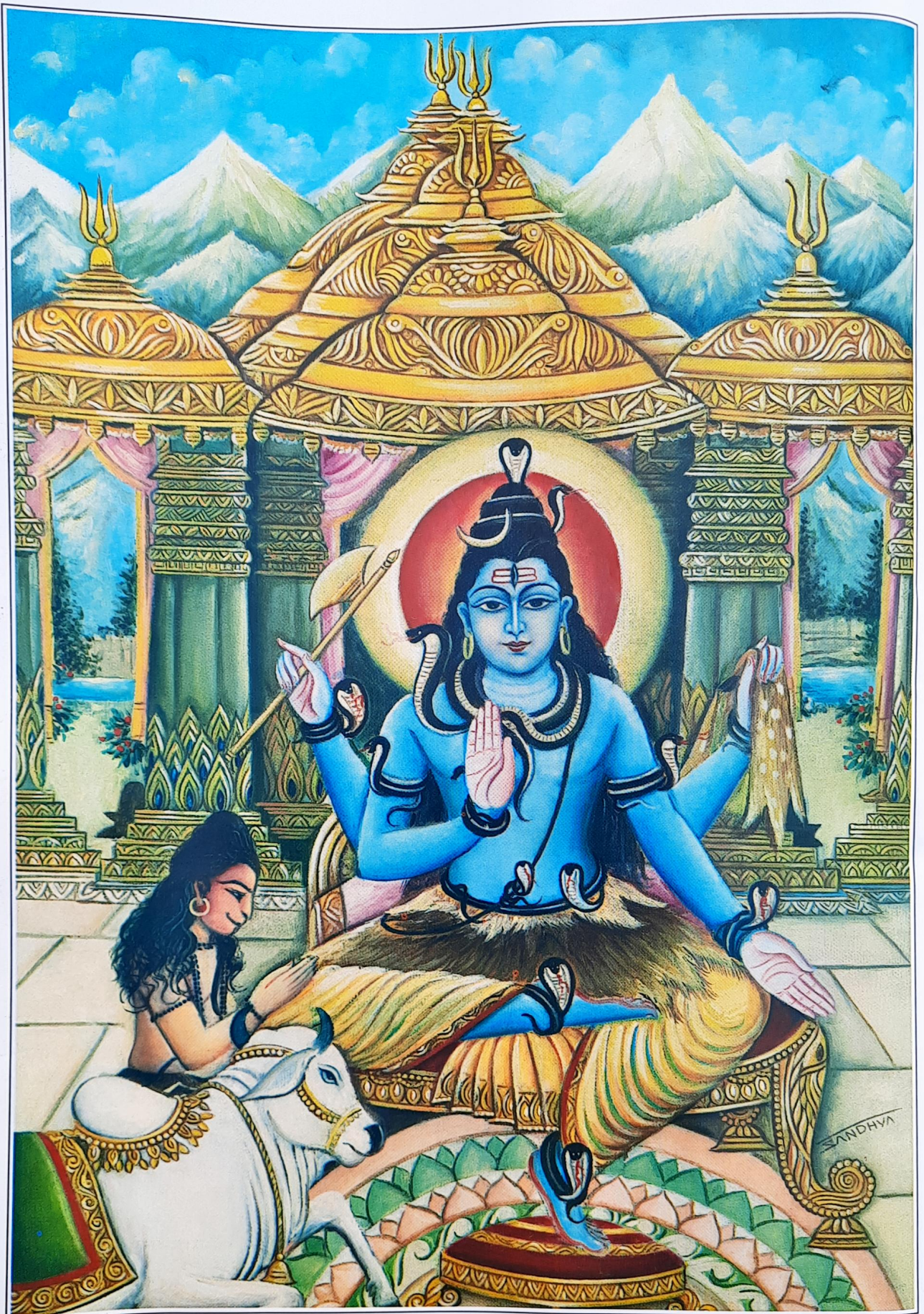
गिरीश

कैलासशिखरप्रोद्यन्मणिमण्डपमध्यगः ।
गिरिशो गिरिजाप्राणवल्लभोऽस्तु सदामुदे॥ (शैवागम)

'कैलासके उच्चतम शिखरपर मणिमण्डपके मध्यमें स्थित, पार्वतीके प्राणवल्लभ भगवान् गिरीश सदा हमें आनन्द प्रदान करें।'

भगवान् शिवके निवासका वर्णन तीन स्थानोंपर मिलता है। प्रथम भद्रवट-स्थान जो कैलासके पूर्वकी ओर लौहित्यगिरिके ऊपर है। दूसरा स्थान कैलास पर्वतपर और तीसरा मूँजवान पर्वतपर है। वैसे तो भगवान् शंकर वैराग्य और संयमकी प्रतिमूर्ति हैं, किन्तु उनकी सम्पूर्ण लीलाएँ कैलासपर सम्पन्न होनेके कारण कैलास पर्वत उन्हें विशेष प्रिय है। कैलास पर्वतपर भगवान् रुद्र अपने तीसरे स्वरूप गिरीशके नामसे प्रसिद्ध हैं। शैवागममें तीसरे रुद्रका नाम गिरीश बताया गया है। कैलास पर्वतपर भगवान् रुद्रके निवासके दो कारण हैं। पहला कारण अपने भक्त तथा मित्र कुबेरको उनके अलकापुरीके सन्निकट रहनेका दिया गया वरदान है और दूसरा कारण रुद्रकी प्राणवल्लभा उमाका गिरिराज हिमवान्के यहाँ अवतार है।

शिवपुराण एवं कालिदासके अनुसार जब भक्तिकी प्रत्यक्ष प्रतिमास्वरूपा भगवती सतीने प्रेमभक्तिका आदर्श दिखलाकर अपने उपास्यदेव भगवान् गिरीशके अनुकूल देह प्राप्त करनेके लिये गिरिराज हिमालयकी महिषी मेनका देवीकी कुक्षिके माध्यमसे अवतार लिया और शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह उत्तरोत्तर युवावस्थाकी ओर बढ़ने लगीं, तब ठीक उसी समय महादेव गिरीश भी हिमालयके उसी प्रान्तमें तपस्याके लिये पदार्पण किये। भगवान् गिरीश रुद्र तो विश्व-ब्रह्माण्डके समस्त जीवोंकी तपस्याके फलदाता हैं। भगवान् रुद्रको तपस्याकी भला क्या आवश्यकता है? कालिदास कहते हैं कि आप्तकाम रुद्रने भक्तिरूपा प्रेममूर्ति पार्वती देवीकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये ही हिमालयपर अपनी तपोलीलाको प्रारम्भ किया था।

हिमवान्ने जब सुना कि जो सबके पूज्य हैं तथा देवता लोग भी जिन भगवान् गिरीशकी नित्य पूजा किया करते हैं, वह स्वयं आकर हिमालयपर तपस्या कर रहे हैं, तब गिरिराजने उनकी तपस्याके अनुकूल सेवाके लिये अपनी प्रिय कन्या पार्वतीको नियुक्त किया। वह सुकेशी पार्वती पिताकी इच्छानुसार महादेव गिरीश रुद्रकी पूजाके लिये स्वयं ही पुष्प-चयन करती, आसन और वेदिकाको साफ-सुथरा रखती, जल और कुशादिका संग्रह करती थी। भगवती पार्वतीद्वारा भगवान् गिरीश रुद्रकी यह प्रेमभक्तिपूर्ण सेवा थी, इसमें कामनाकी कहीं गन्धमात्र भी न थी। महाकवि कालिदासके अमरकाव्य कुमारसम्भव और शिवपुराणमें देवी पार्वतीकी इस भक्तिमयी सेवाका बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। वास्तवमें कामारि शंकरका पार्वतीजीकी भक्ति-कामनाको सिद्ध करनेके लिये जो तप-निरत स्वरूप है, वही गिरीश रुद्रका करुणामय रूप है।

आधिभौतिक रूपमें इन्हीं भगवान् गिरीशकी अग्निमूर्ति (तेजोलिङ्ग) अरुणाचलमें अवस्थित है। कहा जाता है कि एक बार पार्वतीजीने भगवान् शंकरके नेत्रोंको कौतुकमें अपने हाथोंसे बन्द कर दिया, जिससे सर्वत्र अन्धकार व्याप्त हो गया, क्योंकि सूर्य और चन्द्र भगवान् रुद्रके नेत्र हैं। इससे सृष्टिके सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राणोंके लिये संकट उपस्थित हो गया। इसके पश्चात् प्रायश्चित्तस्वरूप पार्वतीजीने शिवकाञ्ची और अरुणाचलमें कठोर तपस्या की। तदनन्तर अग्निशिखाके रूपमें तेजःस्वरूप एक अलौकिक लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ। जिससे जगत्का अन्धकार दूर हो गया। यही अग्निस्वरूप गिरीश रुद्रका तेजोलिङ्ग है। कार्तिक पूर्णिमाके समय यहाँ दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ होती है।

शिवजीका दुर्वासावतार

अनसूयाके पति ब्रह्मवेत्ता अत्रिने एक बार पुत्र-कामनासे पत्नीके साथ ऋक्षकूल पर्वतपर जाकर कठोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवता प्रकट हुए। त्रिदेवोंने कहा—'अत्रि! हम तुम्हारी तपस्यासे परम प्रसन्न हैं। तुम अपने इच्छानुसार वर माँगो। हम त्रिदेवोंके पास तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है।' अत्रिने त्रिदेवोंसे उन्हींके समान पुत्रकी याचना की। त्रिदेव उनके यहाँ समय आनेपर पुत्ररूपमें प्रकट होनेका वर देकर अन्तर्धान हो गये।
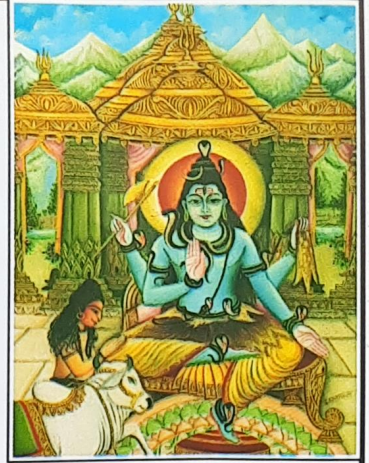
ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा और विष्णुके अंशसे दत्त उत्पन्न हुए। दत्तजी संन्यास-पद्धतिको प्रचलित करनेवाले माने जाते हैं। रुद्रके अंशसे महामुनि दुर्वासाका अवतार हुआ। इन्होंने भगवान्के भक्तकी श्रेष्ठता स्थापित करनेके लिये एक बार भगवान् विष्णुके परम भक्त महाराज अम्बरीषकी परीक्षा ली थी। एक दिन एकादशीव्रतके पारणके पूर्व महाराज अम्बरीषने दुर्वासाजीको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। इन्हें पहुँचनेमें विलम्ब हो गया। पारणका समय निकल रहा था। ब्राह्मणोंकी सलाहपर महाराज अम्बरीषने भगवान्के चरणामृत और तुलसीसे पारण कर लिया। दुर्वासाजीने जब सुना कि अम्बरीषने बिना उनको भोजन कराये ही पारण कर लिया है, तब उन्होंने क्रोधमें आकर कृत्याको प्रकट किया और उसे अम्बरीषको भस्म करनेका आदेश दिया। पहलेसे ही अम्बरीषकी रक्षामें तत्पर सुदर्शन चक्रने कृत्याको भस्म कर दिया। उस समय शिवजीके आदेशसे अम्बरीषके प्रार्थना करनेपर सुदर्शन चक्र शान्त हुआ।

दुर्वासाजीने भगवान् श्रीरामकी भी परीक्षा की। एक बार यमराज मुनिवेष धारण करके श्रीरामके पास आये। उन्होंने श्रीरामके सामने यह शर्त रखी कि हमारे और आपके बीच वार्ताके समय यहाँ किसीको भी नहीं आना चाहिये। आप ऐसा आदेश कर दें कि यहाँ वार्ताके बीच यदि कोई आ जायगा तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा। उसी समय अचानक कहींसे दुर्वासाजी आ गये और उन्होंने हठ करके वहाँ लक्ष्मणको भेज दिया, जिसके कारण श्रीरामने तुरन्त लक्ष्मणका त्याग कर दिया। इन्होंने श्रीकृष्णकी परीक्षा की और उनको श्रीरुक्मिणीसहित रथमें जोता।

एक बार दुर्वासा दुर्योधनके यहाँ पहुँचे। दुर्योधनने इनका कई दिनोंतक यथोचित सत्कार किया। इन्होंने प्रसन्न होकर दुर्योधनसे वर माँगनेके लिये कहा। उसने दुर्वासासे वनमें रहनेवाले पाण्डवोंके पास पहुँचकर उस समय भिक्षा करनेका अनुरोध किया, जब पाण्डवोंसहित द्रौपदी भोजन कर चुकी हो। दुर्वासाने दुर्योधनसे पाण्डवोंके पास उसी समय पहुँचनेका वचन दिया। एक दिन पाण्डवोंसहित द्रौपदीके भोजन कर लेनेके बाद यह पाण्डवोंके पास पहुँचे और उनसे बोले—'मैं अपने शिष्योंसहित स्नान करनेके बाद तुम्हारे यहाँ आ रहा हूँ। तुम तत्काल मेरे लिये भोजनकी व्यवस्था करो।'

द्रौपदीके भोजन कर लेनेके कारण सूर्यके द्वारा प्राप्त अक्षयपात्र खाली हो चुका था। पाण्डवोंके पास दुर्वासाके कोपसे बचनेका कोई उपाय नहीं बचा था। अन्तमें द्रौपदीने श्रीकृष्णको याद किया और उन्होंने पहुँचकर दुर्वासाके कोपसे पाण्डवोंकी रक्षा की। इस प्रकार दुर्वासा मुनिने अनेक विचित्र चरित्र किये।

[1156] 3/B

भर्ग

चंद्रावतंसो जटिलस्त्रिणेत्रोभस्मपाण्डरः।
हृदयस्थः सदाभूयाद् भर्गो भयविनाशनः॥ (शैवागम)

'चन्द्रभूषण, जटाधारी, त्रिनेत्र, भस्मोज्वल, भयनाशक भर्ग सदा हमारे हृदयमें निवास करें।'

पाँचवें रुद्र भगवान् भर्गको भयविनाशक कहा गया है। दुःख-पीड़ित संसारको शीघ्रातिशीघ्र दुःख और भयसे मुक्त करनेवाले केवल महादेव भगवान् भर्ग रुद्र ही हैं। भर्ग रुद्र (तेज) ज्ञानस्वरूप होनेके कारण मुक्ति प्रदान करके भक्तोंको भव (संसार)-सागरके भयसे भी त्राण देते हैं।

एक समय देवता और दैत्योंने अमृत प्राप्त करनेके लिये समुद्र-मन्थन किया। समुद्र-मन्थनमें सर्वप्रथम महोल्वण हलाहल नामक विष निकला। उस भयंकर विषकी प्रचण्ड ज्वालासे तीनों लोकोंके प्राणी त्राहि-त्राहि कर उठे। सबके प्राणोंपर आसन्न मृत्युका संकट उपस्थित हो गया। भगवान् विष्णु भी इस विकराल भयसे प्राणियोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ रहे। अन्तमें सभी देवता भगवान् विष्णुके साथ मिलकर भयविनाशक भगवान् भर्ग रुद्रकी शरणमें गये। भगवान् भर्ग रुद्र उस समय कैलासपर अपनी अर्धाङ्गिनी पार्वतीके साथ विराजमान थे। देवताओंने साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनसे कहा—'हे महादेव! समुद्रसे निकले हुए कालकूट विषकी भयंकर ज्वालासे हम देवताओंसहित सृष्टिके समस्त प्राणी जलकर भस्म हो रहे हैं। समस्त प्राणियोंको भयसे मुक्त करनेवाले हे भर्ग रुद्र! आप इस कालकूटके महान् भयसे हमारी शीघ्र रक्षा करें।'
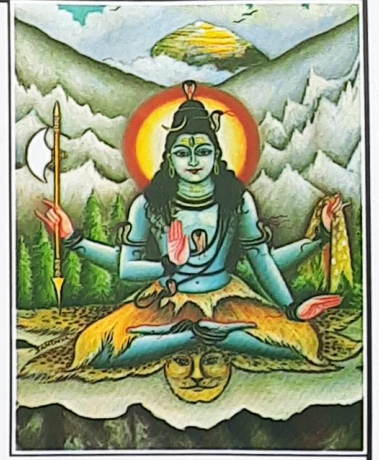
इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् भर्ग रुद्र पार्वतीजीसे बोले—'प्रिये! देखो, क्षीर-सागरसे निकले इस कालकूट विषसे देवताओंसहित समस्त प्राणियोंको कितना कष्ट हो रहा है। सभी अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये अत्यन्त व्याकुल हैं। इनको अभय प्रदान करना हमारा परम कर्तव्य है। साधु पुरुष अपने प्राणोंको क्षणभङ्गुर समझकर दूसरोंकी रक्षाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देते हैं। अतः इस भयसे सृष्टिके प्राणियोंको मुक्त करनेके लिये मैं स्वयं इस कालकूट विषका पान करता हूँ।' ऐसा कहकर करुणासागर भर्ग रुद्र दिशाओंमें व्याप्त उस हलाहल विषको हथेलीपर रखकर पान कर गये और वह हलाहल विष रुद्रके कण्ठमें नीलवर्ण धारणकर भगवान् शंकरका भूषण हो गया। परोपकारके लिये समष्टिके कल्याणार्थ आत्मत्यागके कारण भगवान् रुद्रके इस पाँचवें स्वरूपका नाम भर्ग रुद्र है। विषकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये उन्होंने समुद्रसे निकले चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किया।

परोपकारके प्रतीक भगवान् भर्ग रुद्रकी आधिभौतिक आकाशमूर्ति आकाशलिङ्गरूपमें चिदम्बरम्में कावेरी नदीके तटपर स्थित है। यहाँ प्रधान मन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है। एक-दूसरे मन्दिरमें ताण्डव-नृत्यकारी चिदम्बरेश्वर नटराजकी मनोरम मूर्ति विद्यमान है। चिदम्बरम्का अर्थ है—चित्=ज्ञान+अम्बर=आकाश, चिदाकाश। बगलमें ही एक मन्दिरमें शेषशायी विष्णुभगवान्के दर्शन होते हैं। शंकरजीके मन्दिरमें सोनेसे मढ़ा हुआ एक बड़ा-सा दक्षिणावर्त शङ्ख रखा हुआ है, जो गजमुक्ता, नागमणि और एकमुखी रुद्राक्षकी भाँति अमूल्य और अलभ्य माना जाता है। मन्दिरमें एक ओर एक परदा पड़ा रहता है। परदा उठाकर दर्शन करनेपर स्वर्णनिर्मित कुछ मालाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यही भगवान् रुद्रका आकाशलिङ्ग है। वैसे भी भगवान् रुद्रका स्थान चिदाकाश कहा गया है।

भगवान् शिवका यतिनाथ और हंस नामक अवतार

अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप एक भील रहता था। उसका नाम आहुक था। उसकी पत्नीको लोग आहुका कहते थे। वह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वे दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे। एक दिन वह भील अपनी पत्नीके लिये आहारकी खोजमें बहुत दूर चला गया। उसी समय सन्ध्याकालमें भीलकी परीक्षा करनेके लिये भगवान् शंकर संन्यासीका रूप धारण करके उसके घर आये। इतनेमें वह भील भी अपने घर वापस आ गया। उसने बड़े ही प्रेमसे यतिराजका पूजन किया। यतीश्वरने भीलकी परीक्षा करनेके लिये उससे कहा कि तुम आजकी रात अपने यहाँ रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही चला जाऊँगा, तुम्हारा कल्याण हो।

भील बोला—'स्वामीजी! आप ठीक कहते हैं, यद्यपि मेरे घरमें मात्र दो आदमियोंके योग्य ही स्थान है। फिर उसमें आपका रहना कैसे हो सकता है।' भीलकी बात सुनकर स्वामीजी जानेके लिये तैयार हो गये। तब भीलनीने कहा—'प्राणनाथ! घर आये हुए अतिथिको वापस न लौटाइये अन्यथा हमारे गृहस्थ-धर्मकी हानि होगी। आप स्वामीजीके साथ सुखपूर्वक घरके भीतर रहिये। मैं अस्त्र-शस्त्र लेकर बाहर खड़ी रहूँगी।' पत्नीकी बात सुनकर भीलने स्त्रीको बाहर रखना उचित न समझकर स्वयं बाहर खड़े रहनेका निर्णय लिया और स्वामीजीको घरके भीतर ठहराकर बाहर खड़ा होकर पहरा देने लगा। रातमें हिंसक पशुओंने उसे मारकर खा डाला। इस घटनाको देखकर संन्यासीको बड़ा दुःख हुआ। संन्यासीको दुःखी देखकर भीलनी धैर्यपूर्वक बोली—'स्वामीजी! आप दुःख न करें। भीलराजने अपने कर्तव्यका पालन करनेमें अपना बलिदान किया है। ये धन्य और कृतार्थ हो गये। मैं चिताकी आगमें जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें।' संन्यासीने उस भीलनीके लिये चिताकी व्यवस्था कर दी। भीलनीने अपने पातिव्रत्य धर्मके अनुसार उसमें प्रवेश किया। उसी समय भगवान् शंकरने अपने वास्तविक स्वरूपमें भीलनीके समक्ष प्रकट होकर उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन्होंने उसके धर्मके प्रति दृढ़ताकी प्रशंसा की और उसे वर दिया कि तुम्हारे भावी जन्ममें मेरा हंसरूप प्रकट होगा। वह तुम दोनों पति-पत्नीका परस्पर संयोग करायेगा। तुम्हारा पति निषध देशकी राजधानीमें राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय वह नलके नामसे विख्यात होगा और तुम विदर्भ नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती नामसे जन्म लेगी। तुम दोनों उत्तम राजभोग भोगनेके पश्चात् बड़े-बड़े योगीश्वरोंके लिये दुर्लभ मेरे पवित्र शिवलोकमें जाओगे।'

ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय वहीं लिङ्गरूपसे स्थित हो गये। वह भील अपने धर्मसे विचलित नहीं हुआ था, अतः उसीके नामपर उस लिङ्गका नाम अचलेश हुआ। दूसरे जन्ममें वह भील निषध देशमें वीरसेनका पुत्र होकर महाराज नलके नामसे विख्यात हुआ और उसकी पत्नी विदर्भ नगरके राजा भीमकी पुत्री दमयन्ती हुई। यतिनाथ शिव उस समय हंसके रूपमें प्रकट हुए। उन्होंने दमयन्तीके साथ नलका विवाह कराया। पूर्वजन्मके सत्कारजनित पुण्यके प्रभावसे भगवान् शिवने हंसका रूप धारणकर उन दोनोंका संदेश एक-दूसरेके पास पहुँचाकर उन्हें सुख प्रदान किया। इसके बाद वे दोनों पति-पत्नी शिवलोकको प्राप्त किये।

सदाशिव

ब्रह्मा भूत्वासृजँल्लोकं विष्णुर्भूत्वाथ पालयन्।
रुद्रो भूत्वाहरन्नंते गतिर्मेऽस्तु सदाशिवः॥ (शैवागम)

'जो ब्रह्मा होकर समस्त लोकोंकी सृष्टि करते हैं, विष्णु होकर सबका पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे सबका संहार करते हैं, वे सदाशिव मेरी परमगति हों।'

शैवागममें रुद्रके छठें स्वरूपको सदाशिव कहा गया है। शिवपुराणके अनुसार सर्वप्रथम निराकार परब्रह्म रुद्रने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्तिकी कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सबकी एकमात्र वन्दनीया, शुभ-स्वरूपा, सर्वरूपा तथा सम्पूर्ण संस्कृतियोंका केन्द्र थी। उस मूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय ब्रह्म अन्तर्हित हो गया। इस प्रकार जो मूर्तिरहित परब्रह्म रुद्र हैं, उन्हींके चिन्मय आकार सदाशिव हैं। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् उन्हींको ईश्वर भी कहते हैं। एकाकी विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की। वह शक्ति अम्बिका कही जाती है। उसीको त्रिदेव-जननी, नित्या और मूल कारण भी कहते हैं। सदाशिवके द्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिकी आठ भुजाएँ हैं। वह अकेली ही सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती है। वही सबकी योनि है। एकाकिनी होनेपर भी वह अपनी मायासे अनेक रूप धारण करती है।

जो सदाशिव हैं, उन्हें परम पुरुष ईश्वर और महेश्वर कहते हैं। शिवपुराणके अनुसार वे अपने मस्तकपर आकाश-गङ्गाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र हैं। वे दस भुजाओंसे युक्त एवं त्रिशूलधारी हैं। उनके श्रीअंगोंकी प्रभा कपूरके समान गौर तथा भस्मसे विभूषित है। उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था। उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण और मोक्षका स्थान है। शक्ति और सदाशिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। भगवान् सदाशिव और अम्बिका परमानन्दस्वरूपिणी काशीका कभी त्याग नहीं करते हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे अविमुक्त क्षेत्रके रूपमें जानते हैं। वह क्षेत्र आनन्दका हेतु है। इसलिये सदाशिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रखा। उसके बाद वह अविमुक्तके नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर भगवान् सदाशिव स्वयं ही ब्रह्मा होकर सृष्टिका सृजन, विष्णु बनकर सृष्टिका पालन तथा रुद्ररूपमें सृष्टिका संहार करने लगे। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश भगवान् रुद्रके ही स्वरूप हैं। भगवान् शंकरके उपासक नित्य विज्ञानानन्द, निर्गुण ब्रह्मको सदाशिव, सर्वव्यापक, निराकार, सगुण ब्रह्मको महेश्वर, सृष्टिको उत्पन्न करनेवालेको ब्रह्मा, पालनकर्ताको विष्णु और संहारकर्ताको रुद्र और इन पाँचोंको ही रुद्रका स्वरूप कहते हैं।

आधिभौतिकरूपमें भगवान् सूर्य सदाशिव रुद्रके ही स्वरूप हैं। शास्त्रों एवं धर्मग्रन्थोंके अनुसार सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। सदाशिव और सूर्यमें कोई भेद नहीं है।

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

वैसे भी सूर्य और चन्द्र भगवान् सदाशिवके नेत्र हैं। इसलिये भगवान् सदाशिव सूर्य सोमात्मक हैं। सदाशिव और सूर्यमें पूर्णतया अभेद है। अतः प्रत्येक सूर्य-मन्दिर भगवान् सदाशिवकी सूर्यमूर्तिका परिचायक है।

भगवान् शिवका कृष्णदर्शन नामक अवतार

श्राद्धदेव नामक मनुके सबसे छोटे पुत्रका नाम नभग था। भगवान् शिवने उन्हें ज्ञान प्रदान किया था। मनुपुत्र नभग बड़े ही बुद्धिमान् थे। जिस समय नभग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे उसी बीच उनके इक्ष्वाकु आदि भाइयोंने नभगके लिये कोई भाग न देकर पिताकी सारी सम्पत्ति आपसमें बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर राज्यका संचालन करने लगे। कुछ कालके बाद ब्रह्मचारी नभग गुरुकुलसे वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके वहाँ आये। उन्होंने देखा कि सब भाई सारी सम्पत्तिका बँटवारा करके अपना-अपना भाग ले चुके हैं। नभगने अपने भाइयोंसे कहा कि आपलोगोंने मेरे लिये हिस्सा दिये बिना आपसमें पिताकी सारी सम्पत्तिका बँटवारा कर लिया। अतः अब प्रसन्नतापूर्वक मुझे भी हिस्सा दीजिये। मैं अपना भाग प्राप्त करनेके लिये यहाँ आया हूँ। नभगके भाइयोंने कहा कि जब सम्पत्तिका बँटवारा हो रहा था उस समय हम तुम्हारे लिये हिस्सा देना भूल गये। अब हम पिताजीको ही तुम्हारे हिस्सेमें देते हैं।

भाइयोंका यह वचन सुनकर नभगको बड़ा विस्मय हुआ। वे पिताके पास गये और उन्हें भाइयोंके साथ हुई सारी बातोंकी जानकारी दी। श्राद्धदेवने कहा—'बेटा! तुम्हारे भाइयोंने ये बातें तुम्हें ठगनेके लिये कही हैं। फिर भी मैं तुम्हारी जीविकाका एक उपाय बताता हूँ। इस समय आङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। प्रत्येक छठे दिनके यज्ञमें उनसे भूल हो जाती है। तुम वहाँ जाओ और उन ब्राह्मणोंको विश्वेदेव-सम्बन्धी दो सूक्त बतला दो। यज्ञ समाप्त होनेपर जब वे ब्राह्मण स्वर्ग जाने लगेंगे, तब तुम्हें यज्ञसे बचा हुआ सारा धन दे देंगे।'

पिताके आदेशसे सत्यवादी नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ उस उत्तम यज्ञमें गये और छठे दिनके यज्ञ-कर्ममें उन्होंने विश्वेदेव-सम्बन्धी दोनों सूक्तोंका स्पष्ट रूपसे उच्चारण किया। यज्ञकर्म समाप्त होनेपर वे आङ्गिरस ब्राह्मण यज्ञसे अवशेष अपना-अपना धन नभगको देकर स्वर्गको चले गये। यज्ञशिष्ट धनको जब नभग ग्रहण करने लगे, उस समय सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शिव कृष्णदर्शन-रूपमें प्रकट हो गये। उन्होंने नभगसे पूछा—'तुम इस धनको क्यों ले रहे हो? यह तो मेरी सम्पत्ति है।' नभगने कहा—'यह यज्ञशेष धन मुझे ऋषियोंने दिया है। तुम मुझे रोकनेवाले कौन होते हो?'

कृष्णदर्शनने कहा—'तात! हम दोनोंके इस झगड़ेके तुम्हारे पिता ही पंच रहेंगे, वही बतायेंगे कि यह सम्पत्ति किसकी है। जाकर उनसे पूछो और जो निर्णय दें, उसे ठीक-ठीक बताओ।' नभगने जब अपने पितासे पूछा तो उन्होंने कहा—'पुत्र! वे साक्षात् भगवान् शिव हैं। यों तो संसारकी सभी वस्तुएँ ही उनकी हैं, किन्तु यज्ञशेष धनपर केवल भगवान् रुद्रका ही अधिकार है। वे तुमपर विशेष कृपा करनेके लिये वहाँ आये हैं। तुम उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करो और अपने अपराधके लिये उनसे क्षमा माँगो।'

नभग पिताकी आज्ञासे वहाँ गये और हाथ जोड़कर बोले—'महेश्वर! यह सारी त्रिलोकी आपकी है। फिर यज्ञसे बचे हुए धनके लिये तो कहना ही क्या है। निश्चय ही इसपर आपका ही अधिकार है। यही मेरे पिताका निर्णय है। नाथ! मैंने यथार्थ न जाननेके कारण जो कुछ कहा है, उसके लिये आप मुझे क्षमा करें।'

भगवान् कृष्णदर्शन बोले—'नभग! तुम्हारे पिताके धर्मानुकूल निर्णय एवं तुम्हारी सत्यवादितासे मैं परम प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वके उपदेशके साथ इस यज्ञका सारा धन देता हूँ।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये।

[1156] 4/A

शिव

गायत्रीप्रतिपाद्यायाप्योंकारकृतसद्मने ।
कल्याणगुणधाम्नेऽस्तु शिवाय विहितानतिः ॥ (शैवागम)

'गायत्री जिनका प्रतिपादन करती है, ओंकार ही जिनका भवन है, ऐसे समस्त कल्याण और गुणोंके धाम शिवको मेरा प्रणाम है।'

शैवागममें रुद्रके सातवें स्वरूपको शिव कहा गया है। शिव शब्द नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माका वाचक है। इसीलिये शैवागम भगवान् शिवको गायत्रीके द्वारा प्रतिपाद्य एवं एकाक्षर ओंकारका वाच्यार्थ मानता है। शिव शब्दकी उत्पत्ति 'वश कान्तौ' धातुसे हुई है, जिसका तात्पर्य यह है कि जिसको सब चाहते हैं, उसका नाम शिव है। सब चाहते हैं, अखण्ड आनन्दको। अतएव शिव शब्दका तात्पर्य अखण्ड आनन्द हुआ। जहाँ आनन्द है, वहीं शान्ति है और परम आनन्दको ही परम कल्याण कहते हैं। अतः शिव शब्दका अर्थ परम कल्याण समझना चाहिये। इसलिये शिवको कल्याण गुण-निलय कहा जाता है।

शिवतत्त्वको केवल हिमालयतनया भगवती पार्वती ही यथार्थरूपसे जानती हैं। शिवपुराणका उमा-शिव-संवाद बहुत ही उपदेशप्रद और रोचक है।

पार्वतीजी शिवप्राप्तिके लिये घोर तप करने लगीं। माता मेनकाने स्नेहकातरा होकर उ (वत्से!) मा (ऐसा तप न करो) कहा, उससे उनका नाम उमा हो गया। उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये, तब उनका नाम 'अपर्णा' पड़ा। पार्वतीजीकी इस कठोर तपस्याको देखनेके लिये भगवान् शिव वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें तपोभूमिमें आये और बोले—'हे देवि! इतनी देर बातचीत करनेसे तुमसे मेरी मित्रता हो गयी है। इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारा शिवके साथ विवाह करनेका संकल्प सर्वथा अनुचित है। जरा सोचो तो सही, कहाँ तुम्हारा त्रिभुवन कमनीय सौन्दर्य और कहाँ जटाधारी चिताभस्मका लेपन करनेवाले भूतपति शिव! न शिवके माँ-बापका पता है, न जातिका! दरिद्रता इतनी है कि पहननेके लिये कपड़ातक नहीं है। दिगम्बर रहते हैं, बैलकी सवारी करते हैं और बाघका चमड़ा ओढ़ते हैं। न उनमें विद्या है, न शौचाचार ही है। सदा अकेले रहनेवाले, उत्कट विरागी, मुण्डमालाधारी शिवके साथ रहकर तुम कौन-सा सुख पाओगी।

पार्वती और अधिक शिव-निन्दा न सुन सकीं। वे क्रुद्ध होकर बोलीं—'बस रहने दो, मैं और अधिक नहीं सुनना चाहती। तुम शिवके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते हो। इसीसे इस प्रकार मिथ्या प्रलाप कर रहे हो। शिव वस्तुतः निर्गुण हैं। सृष्टि-कल्याणके लिये करुणावश ही वे सगुण होते हैं। सगुण-निर्गुण उभयात्मक शिवकी जाति कहाँसे होगी? जो सबके आदि हैं, उनके माता-पिता कौन होंगे और उनकी उम्रका क्या परिमाण होगा? सृष्टि उनसे उत्पन्न होती है, अतः उनकी शक्तिका पता कौन लगा सकता है। सारी विद्याएँ जिनसे उत्पन्न हुईं, वेद जिनके निःश्वास हैं, उन्हें तुम विद्याहीन कहते हो? सभी देवताओंका देवत्व तो भोलेनाथ शिवकी कृपाका ही फल है। भगवान् शिवका मंगलमय नाम जिनके मुखसे निरन्तर उच्चरित होता है, ऐसे लोगोंके दर्शनमात्रसे भी समस्त अमंगलोंका नाश हो जाता है। फिर शिवके दर्शनकी तो बात ही क्या है। भगवान् शिवके श्रीअंगोंसे झड़नेवाली चिता-भस्मको धारण करनेके लिये सभी देवता लालायित रहते हैं। शिव-निन्दा सुननेवालेको महापापका भागी होना पड़ता है। अब मैं यहाँ एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहती हूँ।' पार्वतीकी शिवतत्त्वपर दृढ़ निष्ठा देखकर भगवान् शिव छद्म वेषको छोड़कर उनके सामने प्रकट हो गये। इस प्रकार पार्वतीकी इच्छा पूर्ण हुई। आधिभौतिक सातवें रुद्रके रूपमें भगवान् शिवकी चन्द्रमूर्ति काठियावाड़में सोमनाथके नामसे प्रसिद्ध है।

भगवान् शिवका अवधूतेश्वरावतार

एक बार देवराज इन्द्र देवताओं और बृहस्पतिके साथ भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर गये। उस समय बृहस्पति और इन्द्रके आगमनकी बात जानकर भगवान् शंकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये अवधूत बन गये। उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था। वे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी होनेके कारण महाभयंकर जान पड़ते थे। इन्द्रने देखा कि एक अद्भुत पुरुष रास्तेमें खड़ा है। इन्द्रको अपने अधिकारपर बड़ा गर्व था। उन्होंने मार्गमें खड़े उस पुरुषसे पूछा—'तुम कौन हो? भगवान् शिव इस समय अपने स्थानपर हैं या कहीं अन्यत्र गये हैं? मैं देवताओं और गुरुजीके साथ उनके दर्शनके लिये जा रहा हूँ।' इन्द्रके बार-बार पूछनेपर भी महायोगी शिव मौन रहे। तब अपने ऐश्वर्यके घमण्डमें चूर इन्द्रने क्रोधित होकर कहा—'अरे मूढ़! तू बार-बार पूछनेपर भी उत्तर नहीं देता है। अतः मैं तुझे अभी अपने वज्रसे मार डालता हूँ।' इस प्रकार कहकर इन्द्रने जैसे ही अवधूतको मार डालनेके लिये अपना वज्र उठाया, भगवान् शंकरने उनके वज्रका तत्काल स्तम्भन कर दिया। इन्द्रकी बाँह अकड़ गयी। इधर अवधूत भगवान् शिव क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे। बृहस्पति अवधूतको तेजसे प्रज्वलित देखकर समझ गये कि ये साक्षात् भगवान् हर हैं।
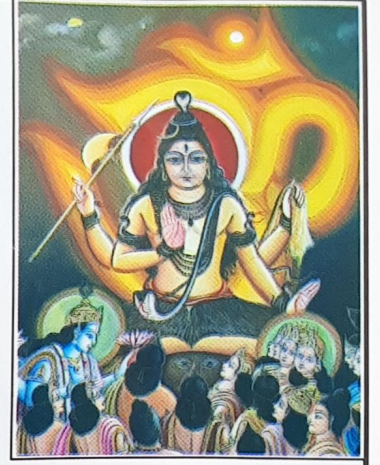
फिर वे हाथ जोड़कर भगवान् हरकी स्तुति करने लगे। उन्होंने इन्द्रको भगवान् हरके चरणोंमें गिरा दिया और कहा—'महादेव! इन्द्र आपके चरणोंमें पड़ा है। आप इसका और मेरा उद्धार करें। आपके ललाटसे प्रकट हुई आग इसे जलानेके लिये आ रही है।'

बृहस्पतिकी बात सुनकर करुणासिन्धु भगवान् हरने कहा—'अपने नेत्रसे निकली हुई अग्निको मैं पुनः कैसे धारण कर सकता हूँ। क्या सर्प अपनी छोड़ी हुई केंचुलको पुनः धारण करता है।' बृहस्पतिने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! भक्त सदा ही कृपाके पात्र होते हैं। आप अपने भक्तवत्सल नामको चरितार्थ करते हुए इस भयंकर तेजको कहीं अन्यत्र डाल दीजिये।'

भगवान् रुद्रने कहा—'देवगुरु! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। इसलिये उत्तम वर देता हूँ। इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आजसे तुम्हारा एक नाम जीव भी होगा। मेरे तृतीय नेत्रसे प्रकट हुई इस आगको देवता नहीं सह सकते। अतः मैं इसको बहुत दूर छोड़ूँगा, जिससे यह इन्द्रको पीड़ा न दे सके।'

ऐसा कहकर अपने तेजस्वरूप उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर भगवान् शिवने उसे क्षार समुद्रमें फेंक दिया। वहाँ फेंके जाते ही भगवान् शिवका वह तेज तत्काल एक बालकके रूपमें परिणत हो गया। वही बालक आगे चलकर सिन्धुपुत्र जलन्धरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान् शिवने ही असुरोंके स्वामी जलन्धरका वध किया।

अवधूतरूपसे यह सुन्दर लीला करके भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। इन्द्र और बृहस्पति भी उस भयसे मुक्त होकर उत्तम सुखके भागी हुए। जिसके लिये इन्द्र भगवान् शिवके पास आये थे, वह कार्य भी करुणासागर हरकी कृपासे सिद्ध हुआ। इस प्रकार लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने इन्द्रका गर्व-भंजन किया। उसके बाद सभी देवताओंके साथ भगवान् शंकरकी इस अद्भुत अवधूत लीलाका चिन्तन करते हुए इन्द्र और बृहस्पति देवलोक लौट गये।

हर

आशीविषाहारकृते देवौघप्रणताङ्घ्रये।
पिनाकाङ्कितहस्ताय हरायास्तु नमस्कृतिः ॥ (शैवागम)

'जो भुजंग-भूषण धारण करते हैं, देवता जिनके चरणोंमें विनत होते हैं, उन पिनाकपाणि हरको मेरा नमस्कार है।'

शैवागमके अनुसार भगवान् रुद्रके आठवें स्वरूपका नाम हर है। भगवान् हरको सर्पभूषण कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि मंगल और अमंगल सब कुछ ईश्वर-शरीरमें है। दूसरा अभिप्राय यह है कि संहारकारक रुद्रमें संहार-सामग्री रहनी ही चाहिये। समयपर सृष्टिका सृजन और समयपर उसका संहार दोनों भगवान् रुद्रके ही कार्य हैं। सर्पसे बढ़कर संहारकारक तमोगुणी कोई हो नहीं सकता, क्योंकि अपने बच्चोंको भी खा जानेकी वृत्ति सर्प जातिमें ही देखी जाती है। इसलिये भगवान् हर अपने गलेमें सर्पोंकी माला धारण करते हैं। कालको अपने भूषणरूपमें धारण करनेके बाद भी भगवान् हर कालातीत हैं। भगवान् हर अपने शरणमें आनेवाले भक्तोंको आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक तीनों प्रकारके तापोंसे मुक्त कर देते हैं। इसलिये भगवान् रुद्रका हर नाम और भी सार्थक है। उनका पिनाक अपने भक्तोंको अभय करनेके लिये सदैव तत्पर रहता है।
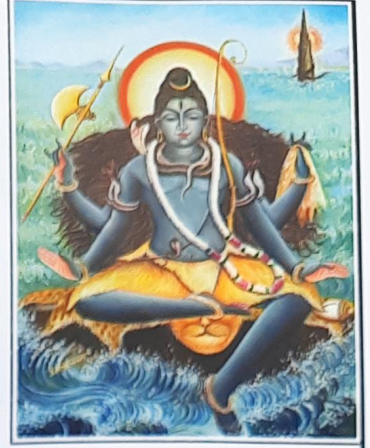
जब भगवान् शंकरके पुत्र स्कन्दने तारकासुरको मार डाला, तब उसके तीनों पुत्रोंको महान् संताप हुआ। उन्होंने मेरु पर्वतकी एक कन्दरामें जाकर हजारों वर्षोंतक तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया। ब्रह्माजीने उन तीनोंके वर माँगनेपर उनके लिये स्वर्ण, चाँदी और लौहके अजेय नगरका निर्माण करनेके लिये मय-दानवको आदेश दिया। इस प्रकार मयने अपने तपोबलसे तारकाक्षके लिये स्वर्णमय, कमलाक्षके लिये रजतमय और विद्युन्मालीके लिये लौहमय—तीन प्रकारके उत्तम दुर्ग तैयार कर दिये। इन पुरोंका भगवान् हरके अतिरिक्त कोई भेदन नहीं कर सकता था। ब्रह्माके वरदान एवं शिवभक्तिके प्रभावसे वे तीनों असुर अजेय होकर देवताओंके लिये संतापकारी हो गये। इन्द्रादि सभी देवता उनके अत्याचारसे पीड़ित होकर भटकने लगे।

तारक-पुत्रोंके प्रभावसे दग्ध हुए सभी देवता ब्रह्माजीको साथ लेकर दुःखी अवस्थामें भगवान् हरके पास गये। अञ्जलि बाँधकर उन सभी देवोंने नाना प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा त्रिशूलधारी भगवान् हरकी स्तुति करते हुए कहा—'महादेव! तारकके पुत्र तीनों भाइयोंने मिलकर इन्द्रसहित सभी देवताओंको परास्त कर दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण सिद्ध स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। वे यज्ञ-भागोंको स्वयं ग्रहण करते हैं। सबके लिये कष्टकारी वे असुर जबतक सृष्टिका विनाश नहीं कर डालते, उसके पहले आप उनको नष्ट करनेका कोई उपाय करें।'

भगवान् हरने कहा—'देवताओ! मैं तुम्हारे कष्टोंसे परिचित हूँ। फिर भी मैं तारक-पुत्रोंका वध नहीं कर सकता हूँ। जबतक वे असुर मेरे भक्त हैं मैं उन्हें कैसे मार सकता हूँ। तारक-पुत्रोंके वधके लिये तुमलोगोंको भगवान् विष्णुके पास जाना चाहिये। जब वे दैत्य विष्णुमायाके प्रभावसे धर्म-विमुख हो जायेंगे तथा मेरी भक्तिका त्याग कर देंगे, तब मैं शर्व रुद्रके रूपमें उन असुरोंका संहार करके तुम लोगोंको उनके अत्याचारसे मुक्त करूँगा। आठवें हर रुद्रकी आधिभौतिक मूर्ति काठमाण्डू (नेपाल) में पशुपतिनाथके नामसे प्रसिद्ध है। इसे यजमान मूर्ति कहते हैं।

भगवान् शिवका भिक्षुवर्यावतार

विदर्भ देशमें एक सत्यरथ नामके प्रसिद्ध राजा थे। धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए उनका बहुत-सा समय सुखपूर्वक बीत गया। तदनन्तर एक दिन शाल्व देशके राजाने उनकी राजधानीपर आक्रमण कर दिया। शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुए राजा सत्यरथकी सेना नष्ट हो गयी। फिर दैवयोगसे राजा भी शत्रुओंके हाथ मारे गये। सत्यरथकी महारानी किसी प्रकार शत्रुओंसे बचती हुई नगरसे बाहर निकल गयीं। उस समय वे गर्भवती थीं। शोकाकुल रानी भगवान् शंकरका चिन्तन करती हुई पूरब दिशाकी ओर बढ़ती गयीं। रातभर चलकर प्रातःकाल वे एक सरोवरके तटपर पहुँचीं। भाग्यवश रानीने सरोवरके किनारे शुभ मुहूर्तमें एक वृक्षके नीचे दिव्य बालकको जन्म दिया। दैवयोगसे रानीको उसी समय जोरसे प्यास लगी और वे जैसे-ही पानी पीनेके लिये सरोवरमें उतरीं, वैसे-ही एक ग्राहने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार जन्म लेते ही वह बालक माता-पितासे विहीन हो गया। इतनेमें ही भगवान् शंकर वहाँ प्रकट होकर उसकी रक्षा करने लगे। उसी समय एक विधवा ब्राह्मणी अपने एक वर्षके बालकको गोदमें लिये हुए वहाँ आ गयी। नवजात शिशुको अकेले पड़े हुए देखकर उसके मनमें आश्चर्यके साथ उसके प्रति करुणा उत्पन्न हो गयी। उसके मनमें उस बालकको अपना पुत्र बनानेकी इच्छा हो गयी। ठीक उसी समय ब्राह्मणीके आ जानेसे अदृश्य हुए भगवान् शंकरने भिक्षुवेषमें प्रकट होकर ब्राह्मणीसे कहा—'ब्राह्मणी! यह बालक परम पवित्र है। तुम इसे अपना पुत्र समझकर इसका पालन-पोषण करो। यह बालक शिवभक्त महाराज सत्यरथका पुत्र है। इसके पिताको शाल्वदेशीय क्षत्रियोंने मार डाला है और इसे प्रसव करनेके बाद इसकी माताको सरोवरमें रहनेवाले ग्राहने अपना आहार बना लिया। पूर्वजन्ममें प्रदोषकालमें शिवजीकी पूजा किये बिना ही भोजन करनेके कारण इसे जन्मसे ही माता-पितासे विहीन होना पड़ा है। यह बालक बहुत बड़ा शिवभक्त होगा।'

इस प्रकार ब्राह्मणीको उपदेश देकर संन्यासी-शरीरधारी भगवान् शिवने उसे अपने उत्तम स्वरूपका दर्शन कराया। ब्राह्मणीने बड़े ही प्रेमसे गद्गदवाणीमें उनकी स्तुति की। उसके बाद भक्तवत्सल शिव अन्तर्धान हो गये। फिर ब्राह्मणी एकचक्रा नामके नगरमें अपने बालकके साथ उस बालकका भी अपने पुत्रकी तरहसे पालन-पोषण करने लगी। यथासमय दोनों बालकोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ।

शाण्डिल्य मुनिके उपदेशसे वे दोनों बालक व्रत रखकर प्रदोषकालमें शिव-उपासना किया करते थे। एक दिन ब्राह्मणीका पुत्र राजकुमारको साथ लिये बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गया। वहाँ उसे रत्नोंसे भरा हुआ एक कलश मिल गया और इस प्रकार उनकी विपन्नता दूर हो गयी। एक वर्षके बाद एक दिन राजकुमार ब्राह्मणकुमारके साथ वनमें गया। वहाँ अकस्मात् अपनी सखियोंके साथ एक गन्धर्व-कन्या आयी। वह कन्या राजकुमारके रूप-सौन्दर्यपर मोहित हो गयी। गन्धर्व-कन्यासे विवाह करके राजकुमार उसके पिताके राज्यका राजा हो गया। अपना पालन करनेवाली विधवा ब्राह्मणीको राजकुमारने राजमाताके पदपर प्रतिष्ठित किया। वह राजकुमार धर्मगुप्तके नामसे वहाँका प्रसिद्ध राजा हुआ। यह था देवेश्वर शिवकी आराधनाका सच्चा फल।

[1156] 5/A+B

शर्व

तिसृणां च पुरां हन्ता कृतांतमदभंजनः।
खड्गपाणिस्तीक्ष्णदंष्ट्रः शर्वाख्योऽस्तु मुदे मम॥ (शैवागम)

'त्रिपुरहन्ता, यमराजके मदका भंजन करनेवाले, खड्गपाणि एवं तीक्ष्णदंष्ट्र शर्व हमारे लिये आनन्ददायक हों।'

भगवान् रुद्रके नौवें स्वरूपका नाम शर्व है। सर्वदेवमय रथपर सवार होकर त्रिपुरका संहार करनेके कारण भी इन्हें शर्व रुद्र कहा जाता है। शर्वका एक तात्पर्य सर्वव्यापी, सर्वात्मा और त्रिलोकीका अधिपति भी होता है।

सभी देवताओंसहित ब्रह्माने त्रिपुरसंहारकी प्रार्थना करते हुए भगवान् रुद्रसे कहा—'प्रभो! आप देवताओंके सार्वभौम सम्राट् होनेके कारण शर्व हैं। ये श्रीहरि आदि देवगण तथा सारा जगत् आपका कुटुम्ब है। अजन्मा देव श्रीहरि आपके युवराज हैं, मैं ब्रह्मा आपका पुरोहित हूँ। इन्द्र आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले और राज्य सँभालनेवाले मन्त्री हैं। अन्य सभी देवता आपके नियन्त्रणमें रहकर अपने-अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं। अतः आप त्रिपुरका संहार करके देवताओंको भयमुक्त करनेकी कृपा करें।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर सुरपालक भगवान् शर्व रुद्रने कहा—'ब्रह्मन्! यदि आप मुझे देवताओंका सम्राट् बतला रहे हैं तो मेरे पास उस पदके अनुरूप सामग्री भी चाहिये। मेरे पास न कोई दिव्य रथ है, न उपयुक्त सारथि है, न संग्राममें विजय दिलानेवाला धनुष है, जिससे मैं उन प्रबल दैत्योंका वध कर सकूँ।' इतना कहकर भगवान् शर्व रुद्र चुप हो गये। तदनन्तर विश्वकर्माने भगवान् शर्व रुद्रके इच्छानुसार सोनेके द्वारा सर्वदेवमय दिव्य रथका निर्माण किया। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य और बायें चक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। छहों ऋतुएँ उस चक्रकी नेमि बनीं। अन्तरिक्ष उसका अग्रभाग हुआ और मन्दराचलको बैठकका स्थान बनाया गया।

संवत्सर उस रथका वेग और पंचभूत उसके बल हुए। श्रद्धा उस रथकी चाल थी तथा वेदोंके छहों अंग उसके भूषण थे। सहस्र फणोंसे युक्त शेषनागकी रस्सी बनी। पुष्कर आदि तीर्थोंकी पताकाएँ बनीं तथा समुद्र उस रथका वस्त्र था। गंगादि पवित्र नदियाँ श्रेष्ठ स्त्रियोंके रूपमें उस रथमें चँवर डुला रही थीं। चारों वेद उस रथके चार घोड़े बने। स्वयं ब्रह्माजी उस रथके सारथि बने। हिमालय पर्वतका धनुष तथा नागराजकी प्रत्यञ्चा बनायी गयी। भगवान् विष्णु बाण तथा अग्नि उस बाणकी नोंक बने। संक्षेपमें ब्रह्माण्डकी सम्पूर्ण वस्तुएँ उस रथमें उपस्थित थीं। उसके बाद परम ऐश्वर्यशाली भगवान् शर्व रुद्र उस रथमें सवार हुए। बड़े-बड़े देवता तथा असुर भगवान् शर्व रुद्रके पशु बने और पशुत्वरूपी पाशसे विमुक्त करनेवाले शर्व रुद्र पशुपति हुए। तभीसे शर्व रुद्रका एक नाम पशुपति हुआ।

जिस समय भगवान् शर्व रुद्र सर्वदेवमय रथपर सवार होकर युद्धके लिये तत्पर हुए, उसी समय तीनों पुर एकताको प्राप्त हो गये। उस समय देवताओंको परम हर्ष हुआ।

विष्णुने कहा—'महेश्वर! तारकके पुत्रों तथा त्रिपुरनिवासी दैत्योंके वधका समय अब आ गया है। इसलिये त्रिपुरके पुनः अलग होनेके पूर्व आप बाण छोड़कर उन्हें भस्म कर डालिये और देवताओंका कार्य सिद्ध कीजिये।'

उसके बाद भगवान् शर्व रुद्रने अपने धनुषपर पाशुपतास्त्र नामक बाणका संधान किया और करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान उस बाणको त्रिपुरपर छोड़ दिया। शीघ्रगामी उस बाणने क्षणमात्रमें त्रिपुरनिवासी दैत्योंको भस्म कर दिया। तत्पश्चात् वे तीनों पुर भी भस्म हो गये। चारों ओर त्रिपुरान्तक भगवान् शर्व रुद्रकी जयकार होने लगी। आधिभौतिक रुद्रके रूपमें शर्व रुद्रको पवमान कहा गया है। इनका निवास आकाशमें है। संहारक होनेके कारण इनसे शान्त रहनेकी प्रार्थना की गयी है।

भगवान् शिवका सुरेश्वरावतार

व्याघ्रपाद मुनिके पुत्रका नाम था उपमन्यु। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमार होकर प्रकट हुए थे। ये शैशवावस्थासे ही अपनी माताके साथ अपने मामाके घरमें रहते थे और दैववश दरिद्र थे। एक दिन उन्होंने अपनी मातासे पीनेके लिये दूध माँगा। अपने एकमात्र बच्चेकी इच्छा पूरी करनेकी सामर्थ्य न रहनेके कारण दुःखसे इनकी माँका कलेजा फट गया। उन्होंने घरमें जाकर कुछ चावल पीसकर कृत्रिम दूध तैयार किया। फिर बेटेको पुचकारकर वह कृत्रिम दूध उसे पीनेको दिया। उस नकली दूधको पीकर उपमन्यु बोले—'माँ यह तो दूध नहीं है।' इतना कहकर वे रोने लगे। उपमन्युकी दोनों आँखें पोंछकर उनकी तपस्विनी माँने कहा—'बेटा! हम लोग वनवासी हैं। हमें यहाँ दूध कहाँसे मिलेगा। भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको दूध नहीं मिलता।'
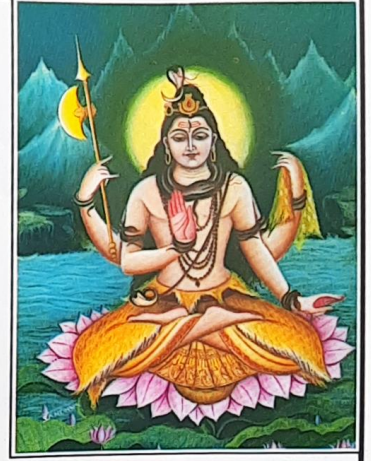
माताकी बात सुनकर उपमन्यु शिवकी आराधना करनेके लिये गये। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया और उसके भीतर मिट्टीका शिवलिङ्ग बनाकर उसमें माता पार्वतीसहित शिवका आवाहन करके भक्ति-भावसे उसका पूजन करने लगे। पूजाके पश्चात् वे पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप किया करते थे। इस तरह उन्होंने दीर्घकालतक बड़ी भारी तपस्या की।

बालक उपमन्युकी कठोर तपस्यासे त्रिभुवन संतप्त हो उठा। फिर देवताओंकी प्रार्थनासे उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षाके लिये स्वयं भगवान् शंकर पधारे। उस समय शिव, देवराज इन्द्र, पार्वतीजी शची, नन्दीश्वर ऐरावत तथा शिवगण देवताओंके रूपमें उपमन्युके पास आये। सुरेश्वररूपधारी शिवने बालक उपमन्युसे वर माँगनेके लिये कहा। उपमन्युने उनसे शिवभक्ति माँगी। सुरेश्वररूपधारी शिवने जब शिवजीकी निन्दा करनी शुरू कर दी, तब उपमन्युने शिवके अतिरिक्त किसीसे भी कुछ लेना अस्वीकार कर दिया। उपमन्युने सुरेश्वररूपधारी शिवके शिव-निन्दा करनेपर उनको मारनेके लिये अघोरास्त्र उठाया, जिसे नन्दीने पकड़ लिया। अघोरास्त्रके विफल हो जानेपर उन्होंने अपने-आपको जलानेके लिये अग्निकी धारणा की, उसको भगवान् शंकरने शान्त कर दिया। फिर भगवान् शंकर सुरेश्वररूपको छोड़कर पार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ अपने वास्तविक रूपमें उपमन्युके समक्ष प्रकट हो गये।

शिवने उपमन्युका मस्तक सूँघकर कहा—'वत्स! आजसे मैं तुम्हारा पिता हूँ और पार्वतीजी तुम्हारी माता हैं। आजसे तुम्हें सनातन कुमारत्व प्राप्त होगा। मैं तुम्हें दूध, दही और मधुके सहस्रों समुद्रके साथ अमरत्व तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ।' इसके अतिरिक्त उन्होंने उपमन्युको पाशुपत-ज्ञानयोग, प्रवचनकी शक्ति तथा योग-सम्बन्धी ऐश्वर्य अर्पित करते हुए हृदयसे लगा लिया।

भगवान् शिवसे वर प्राप्तकर उपमन्यु प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौटे। उन्होंने अपनी माताको अपनी सफलताकी सब बातें बतायीं, जिसे सुनकर उपमन्युकी माताजी परम प्रसन्न हुईं। उसके बाद उपमन्यु सबके पूजनीय और परम सुखी हो गये।

कपाली

दक्षाध्वरध्वंसकरः कोपयुक्तमुखाम्बुजः।
शूलपाणिः सुखायास्तु कपाली मे ह्यहर्निशम्॥ (शैवागम)

'दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले तथा क्रोधित मुख-कमलवाले शूलपाणि कपाली हमें रात-दिन सुख प्रदान करें।'

शैवागमके अनुसार दसवें रुद्रका नाम कपाली है। पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड-१७)-के अनुसार एक बार भगवान् कपाली-ब्रह्माके यज्ञमें कपाल धारण करके गये, जिसके कारण उन्हें यज्ञके प्रवेशद्वारपर ही रोक दिया गया। उसके बाद भगवान् कपाली रुद्रने अपने अनन्त प्रभावका दर्शन कराया। फिर सब लोगोंने उनसे क्षमा माँगी और यज्ञमें उन्हें ब्रह्माके उत्तरमें बहुमानका स्थान प्रदान किया। ऐसी कथा है कि इन्होंने एक बार ब्रह्माको दण्ड देनेके लिये उनका पाँचवाँ मस्तक काट लिया था। कपाल धारण करनेके कारण ही दसवें रुद्रको कपाली कहा जाता है। इसी रूपमें भगवान् रुद्रने क्रोधित होकर दक्ष-यज्ञको विध्वंस किया था।

एक बार प्रयागराजमें मुनियोंका एक महान् समागम हुआ। उसमें ब्रह्माके साथ सभी देवता सम्मिलित हुए। भगवान् कपाली रुद्र भी वहाँ उपस्थित थे। पीछेसे प्रजापतियोंके पति दक्ष प्रजापति भी उस सभामें आये। उन्हें देखकर सभी लोगोंने उठकर उनका सम्मान किया। केवल आत्माराम रुद्र अपने आसनपर ही बैठे रहे। दामादको अभिवादन न करते देखकर दक्ष क्रोधित हो गये और रुद्रको अनेक दुर्वचन कहनेके साथ उनको यज्ञमें भाग न मिलनेका शाप दिया तथा सभासे उठकर चल दिये। बादमें रुद्रको अपमानित करनेके उद्देश्यसे उन्होंने कनखलमें एक विराट् यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें उन्होंने सभी देवताओंको आमन्त्रित किया, केवल भगवान् रुद्रको नहीं बुलाया। रुद्रपत्नी सतीने जब यज्ञका वृत्तान्त सुना तो बिना बुलाये ही पिताके यज्ञमें जानेके लिये भगवान् रुद्रसे अनुमति माँगी। भगवान् रुद्रके समझानेपर भी उन्होंने यज्ञमें वहाँ जानेका हठ नहीं छोड़ा। फिर भगवान् रुद्रने उन्हें राजोचित ठाट-बाटसे अपने मुख्य गणोंके साथ दक्ष-यज्ञमें भेज दिया। यज्ञमें रुद्रका भाग न देखकर सतीने दक्षके साथ वहाँ उपस्थित सभी लोगोंकी जमकर कड़ी भर्त्सना की और दक्षके द्वारा उत्पन्न अपने शरीरको योगाग्निमें भस्म कर दीं।

इधर जब भगवान् कपाली रुद्रको यह दुःखपूर्ण संवाद मिला तो उन्होंने क्रोधित होकर अपनी एक जटा उखाड़कर पत्थरपर पटक दी, जिससे उसके दो टुकड़े हो गये। एक टुकड़ेसे प्रलयाग्निके समान वीरभद्र प्रकट हुए और दूसरेसे महाकाली प्रकट हुईं। इन दोनोंने भगवान् कपाली रुद्रकी आज्ञासे दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर दिया। इनके सामने देवता, मुनि कोई भी नहीं ठहर सके। कुछ धराशायी हो गये और कुछके अंग-भंग हो गये। वीरभद्रने दक्षके सिरको काटकर महाकालीको सौंप दिया। महाकाली उससे गेंदके समान खेलने लगी और बादमें उसे यज्ञ-कुण्डमें डाल दिया। दक्षसहित दक्ष-यज्ञको नष्ट करके वे दोनों भगवान् कपाली रुद्रके पास लौट आये। उसके बाद सभी देवगण ब्रह्मा और विष्णुके साथ भगवान् कपाली रुद्रके पास गये। सब लोगोंने हाथ जोड़कर कपाली रुद्रकी स्तुति की तथा दक्षके अपराधको क्षमा करके उसे जीवन-दान देनेकी और यज्ञको पूर्ण करानेकी प्रार्थना की। भगवान् कपालीने प्रसन्न होकर दक्षके सिरकी जगह बकरेका सिर जोड़कर उसके यज्ञको पूर्ण करा दिया। कपाली रुद्रके आधिभौतिक स्वरूपको पावक कहा जाता है।

शिवजीका किरात वेषमें प्रकट होना

इन्द्रके उपदेश तथा व्यासजीकी आज्ञासे अर्जुन भगवान् महेश्वरकी आराधना करने लगे। उनकी उपासनासे ऐसा उत्कृष्ट तेज प्रकट हुआ, जिससे देवगण विस्मित हो गये। वे शिवजीके पास गये और बोले—'प्रभो! एक मनुष्य आपकी तपस्यामें निरत है। वह जो कुछ चाहता है, उसे आप प्रदान करें।' ऐसा कहकर देवता विनम्रभावसे भगवान् शिवके चरणोंमें दृष्टि लगाकर खड़े हो गये।

उदारबुद्धि भगवान् शिव देवताओंके उस वचनको सुनकर ठठाकर हँस पड़े, क्योंकि इसके पीछे छिपी हुई देवताओंकी स्वार्थबुद्धिसे वे परिचित थे। उन्होंने देवताओंसे कहा कि 'तुमलोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ। मैं तुम लोगोंका कार्य अवश्य पूर्ण करूँगा।'
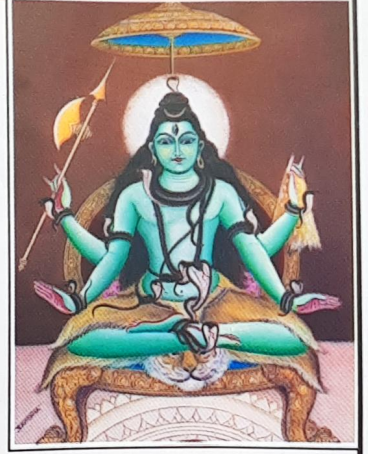
एक दिन मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारणकर अर्जुनकी तपस्थलीके सन्निकट आया। उसे दुराचारी दुर्योधनने अर्जुनको मार डालनेके उद्देश्यसे भेजा था। वह वेगपूर्वक पर्वत शिखरोंको उखाड़ता, वनके वृक्षोंको छिन्न-भिन्न करता तथा भयंकर शब्द करता हुआ आया। अर्जुनने उसे देखकर विचार किया कि यह क्रूरकर्मा निश्चय ही मेरा अनिष्ट करनेके लिये आया है। क्योंकि जिसका दर्शन करते ही मन प्रसन्न हो जाय वह अपना हितैषी होता है और जिसे देखकर मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह निश्चय ही अपना शत्रु है। ऐसा सोचकर अर्जुन अपना धनुष-बाण लेकर खड़े हो गये।

उसी समय भगवान् शंकर भी अर्जुनकी रक्षा और उनकी भक्तिकी परीक्षा तथा उस दैत्यका विनाश करनेके उद्देश्यसे वहाँ शीघ्र प्रकट हो गये। वे उस समय किरात-वेषमें धनुष-बाण धारण किये हुए थे। उनके गण भी उसी वेषमें थे। अचानक शूकर बड़े ही वेगसे अर्जुनकी ओर आया। उधर भगवान् शंकर भी अर्जुनकी रक्षाके लिये आगे बढ़े। एक ही साथ किरात-वेषधारी भगवान् शिव और अर्जुन दोनोंने शूकरको लक्ष्य करके अपना बाण चलाया। शिवजीके बाणका लक्ष्य शूकरका पुच्छ भाग था और अर्जुनने उसके मुखको अपना निशाना बनाया था। शिवजीका बाण उसके पुच्छ भागमें प्रवेश करके मुखके रास्ते निकल गया और भूमिमें विलीन हो गया। अर्जुनका बाण शूकरके पिछले भागसे निकलकर उसके बगलमें गिर गया। वह शूकररूपधारी दैत्य उसी क्षण मरकर भूमिपर गिर पड़ा।

शिवजीने अपना बाण लानेके लिये तुरन्त अपने अनुचरको भेजा। उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेनेके लिये वहाँ आये। एक ही समय रुद्रानुचर और अर्जुन दोनों बाण उठानेके लिये पहुँचे। अर्जुनने भगवान् शिवके अनुचरको डरा-धमकाकर वह बाण उठा लिया। भगवान् शिवके अनुचरने कहा—'यह हमारा सायक है। आप इसे छोड़ दीजिये।' अर्जुन बोले—'वनचर! तू बड़ा मूर्ख है। इस बाणको मैंने अभी छोड़ा है। इसपर मेरा नाम अंकित है।' शिव-अनुचरने उस बाणको अपने स्वामीका बताया। इस प्रकार दोनोंमें बड़ा विवाद हुआ और रुद्र-अनुचरने सारी बातें किरात-वेषधारी भगवान् शिवको बतायी। फिर महादेवजीका अर्जुनके साथ घोर युद्ध हुआ। भगवान् शिवने अर्जुनकी परीक्षाके लिये यह लीला रची थी। उसी समय भगवान् शिवने अर्जुनको अपने दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया। फिर अर्जुनने उनसे अपनी भूलके लिये क्षमा माँगी। भगवान् शिवने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें सभी प्राणियोंके लिये दुर्जय अपना पाशुपत नामक अस्त्र तथा भक्तिका वर दिया।

SANDHYA

भव

योगीन्द्रनुतपादाब्जं द्वंद्वातीतं जनाश्रयम्।
वेदान्तकृतसञ्चारं भवं तं शरणं भजे॥ (शैवागम)

'योगीन्द्र जिनके चरण-कमलोंकी वन्दना करते हैं, जो द्वंद्वोंसे अतीत तथा भक्तोंके आश्रय हैं और जिनसे वेदान्तका प्रादुर्भाव हुआ है, मैं उन भवकी शरण-ग्रहण करता हूँ।'

भगवान् रुद्रके ग्यारहवें स्वरूपका नाम भव है। इसी रूपमें वे सम्पूर्ण सृष्टिमें व्याप्त हैं तथा जगद्गुरुके रूपमें वेदान्त और योगका उपदेश देकर आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त करते हैं। भगवान् रुद्रका यह ग्यारहवाँ स्वरूप जगद्गुरुके रूपमें वन्दनीय है। भव-रुद्रकी कृपाके बिना विद्या, योग, ज्ञान, भक्ति आदिके वास्तविक रहस्यसे परिचित होना असम्भव है। वे अपने क्रिया-कलाप, संयम-नियम आदिके द्वारा जीवन्मुक्त योगियोंके परम आदर्श हैं। लिंगपुराणके सातवें अध्याय और शिवपुराणके पूर्व भागके बाईसवें अध्यायमें भगवान् भव रुद्रके योगाचार्यस्वरूप और उनके शिष्य-प्रशिष्योंका विशेष वर्णन है। प्रत्येक युगमें भगवान् भव रुद्र योगाचार्यके रूपमें अवतीर्ण होकर अपने शिष्योंको योगमार्गका उपदेश प्रदान करते हैं। इन्होंने सर्वप्रथम अपने चार बड़े शिष्योंको योगशास्त्रका उपदेश दिया। उनके नाम रुरु, दधीचि, अगस्त्य और उपमन्यु हैं। ये सभी पशुपति-उपासना और पशुपतिसंहिताके प्रवर्तक हुए। इस प्रकार भगवान् भव-रुद्र ही योगशास्त्रके आदि गुरु हैं।

भगवान् भव-रुद्र ही सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशानरूपमें पाँच कल्पोंमें अवतार लेकर ब्रह्मा एवं चार शिष्योंको आदि गुरुके रूपमें योगशास्त्रका उपदेश देते हैं। विभिन्न कल्पोंके प्रत्येक द्वापरमें भी भगवान् रुद्र प्रकट होकर अपने चार शिष्योंको योगमार्गका प्रवर्तक बनाते हैं। श्वेत-लोहित नामके उन्नीसवें कल्पमें जब ब्रह्माजी परब्रह्मका ध्यान कर रहे थे उसी समय श्वेत और लोहित वर्णवाला शिखाधारी कुमार उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजीने उसे परब्रह्म रुद्र समझकर उसकी वन्दना की। वह समझ गये कि यह सद्योजात कुमार रुद्र हैं। उसी समय वहाँ श्वेत वर्णवाले चार और कुमार प्रकट हुए। उनके नाम सुनन्दन, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्द थे। सद्योजात भगवान् भव रुद्रने प्रसन्न होकर ब्रह्माको ज्ञानके साथ सृष्टि-रचनाकी शक्ति प्रदान की। फिर ब्रह्माजीके द्वारा उन चारों कुमारोंको योग-ज्ञानका उपदेश मिला। वे सब योगनिष्ठ महात्मा हो गये और बादमें योगमार्गके प्रवर्तक हुए। रक्त नामक बीसवें कल्पमें ब्रह्माजीका रक्तवर्णका शरीर हुआ। उस समय पुत्र-कामनासे ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके समक्ष रक्तवर्णधारी वामदेव नामसे रुद्रका प्राकट्य हुआ। तत्पश्चात् विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार कुमार प्रकट हुए। उस अवतारमें भव रुद्रका नाम वामदेव था। उन्होंने ब्रह्माको ज्ञान और सृष्टि-रचनाकी शक्ति प्रदान करनेके साथ चारों कुमारोंको योगमार्गका प्रवर्तक बनाया। इसके बाद पीतवासा नामक इक्कीसवें कल्पमें पुत्र-कामनासे ध्यानावस्थित ब्रह्माजीके समक्ष पीताम्बरधारी तत्पुरुष नामसे अवतरित होकर 'भव' रुद्रने उन्हें ज्ञानोपदेश किया। भगवान् तत्पुरुषके साथ उनके पार्श्वभागसे पीतवसनधारी चार कुमार प्रकट हुए। वे सब योगमार्गके आचार्य हुए। शिव कल्पमें ध्यानस्थ ब्रह्माके सामने भव रुद्रका काले वर्णमें अघोर नामसे प्राकट्य हुआ और उनके पार्श्वभागसे उन्हींकी तरह चार तेजस्वी काले वर्णवाले कुमार प्रकट हुए। वे सभी अघोर नामक योगके प्रवर्तक हुए। इसी प्रकार विश्वरूप कल्पमें ध्यानस्थ ब्रह्माके समक्ष ईशाननामसे प्रकट होकर ब्रह्माको ज्ञानोपदेशके साथ अपने साथ प्रकट हुए चारों कुमारोंको भव रुद्रने योगाचार्य बनाया। इस प्रकार प्रत्येक कल्पमें प्रकट होकर भगवान् रुद्र ज्ञान और योगकी स्थापना करते हैं।

शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार

एक समयकी बात है, भगवान् शिवने भस्मासुरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उसे वरदान दे दिया कि तुम जिसके सिरपर अपना हाथ रख दोगे, वह जलकर भस्म हो जायगा। भस्मासुरने पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर उन्हें प्राप्त करनेके लिये भगवान् शिवको ही भस्म करनेका उपक्रम किया। उस समय भगवान् विष्णुने मोहिनीरूप धारण करके युक्तिद्वारा भस्मासुरको भस्म कर दिया।

भगवान् शिवने जब भगवान् विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन किया, तब वे कामदेवके बाणोंसे आहत होकर क्षुब्ध हो गये। उस समय भगवान् शिवके वीर्यका स्खलन हो गया। सप्तर्षियोंने उस वीर्यको पत्रपुटमें स्थापित कर लिया, क्योंकि भगवान् शिवने ही उनके मनमें उस समय रामकार्यके लिये ऐसी प्रेरणा उत्पन्न की थी। फिर उन महर्षियोंने उस वीर्यको रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकी कन्या अंजनीके कानके रास्ते उसके गर्भमें स्थापित कर दिया। समय आनेपर अंजनीके गर्भसे भगवान् शंकर महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न वानर-शरीर धारण करके अवतार लिये, उनका नाम हनुमान् रखा गया।

हनुमान् अपने शिशुकालमें ही एक बार भगवान् सूर्यको फल समझकर निगल गये। उसी दिन राहु और केतुके द्वारा सूर्य-ग्रहण लगनेवाला था। राहु और केतुने दूसरे व्यक्तिद्वारा सूर्यको निगले जानेकी शिकायत इन्द्रसे की। इन्द्र जब हनुमान्‌जीको रोकने गये, तब हनुमान्‌जी इन्द्र और ऐरावतको कोई दूसरा फल समझकर निगलनेके लिये आगे बढ़े। उस समय इन्द्रने कुपित होकर उनके ऊपर वज्रका प्रहार किया, जिससे वे अचेत हो गये। पवन देवताने हनुमान्‌जीको अचेत देखकर चलना बन्द कर दिया जिससे सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणी संकटमें पड़ गये। उसके बाद सभी देवताओंने हनुमान्‌जीको वरदान दिया। भगवान् सूर्यने गुरुरूपमें उन्हें सम्पूर्ण विद्याओंका दान दिया। हनुमान्‌जीने अल्पकालमें ही सारी विद्याएँ सीख लीं।

तदनन्तर रुद्रके अवतार कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपने विद्यागुरु सूर्यकी आज्ञासे सूर्यांशसे उत्पन्न सुग्रीवके साथ रहने लगे। उसके बाद सीताजीकी खोजमें लगे श्रीरामसे हनुमान्‌जीका मिलन हुआ। उन्होंने श्रीराम और सुग्रीवकी परस्पर मित्रता कराकर सुग्रीवको वालिके भयसे मुक्त कराया और उसे किष्किन्धाका राजा बनवाया। फिर उन्होंने सीताजीकी खोज की और असुरोंका मान-मर्दन किया तथा श्रीरामका कार्य पूरा किया। इस भूतलपर श्रीराम-भक्तिकी स्थापनाके साथ उन्होंने भक्ताग्रगण्य होकर श्रीसीता-रामको सुख प्रदान किया। रुद्रावतार ऐश्वर्यशाली श्रीहनुमान् लक्ष्मणके प्राणदाता, सम्पूर्ण देवताओं एवं असुरोंके गर्वहारी और भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं। वे सदा रामकार्यमें तत्पर रहनेवाले, 'रामदूत' नामसे विख्यात, दैत्योंके संहारक और भक्तवत्सल हैं। हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र धन, कीर्ति एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंका दाता है।

जगन्नाथप्र:

गङ्गावतरण

पूर्वकालमें अयोध्यामें सगर नामक एक परम प्रतापी राजा राज्य करते थे। उनके एक रानीसे एक तथा दूसरीसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। कुछ कालके बाद महाराज सगरके मनमें अश्वमेध-यज्ञ करनेकी इच्छा हुई। राजा सगरने यज्ञीय अश्वकी रक्षाका भार अपने पौत्र अंशुमान्‌को सौंपकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। परन्तु पर्वके दिन राजा सगरके यज्ञीय घोड़ेको राक्षसका रूप धारण करके इन्द्रने चुरा लिया और उसे भगवान् कपिल मुनिके आश्रमके पास छोड़ दिया। राजा सगरके साठ हजार पुत्र पृथ्वीको खोदते हुए तथा घोड़ेका पता लगाते हुए कपिल मुनिके आश्रमपर पहुँचे। महाराज सगरका यज्ञीय अश्व भी वहीं चर रहा था। भगवान् कपिलको ही चोर समझकर सगर-पुत्रोंको अत्यन्त क्रोध हुआ। वे कपिल मुनिको दुर्वचन कहते हुए उन्हें मारनेके लिये दौड़े। भगवान् कपिलने एक ही हुंकारसे उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर अपने चाचाओंका पता लगाते हुए राजकुमार अंशुमान् कपिल मुनिके आश्रमपर पहुँचे, जहाँ सगरके साठ हजार पुत्र कपिल मुनिकी क्रोधाग्निमें जलकर राखके ढेर हुए पड़े थे। महातेजस्वी अंशुमान्‌ने उनको जलाञ्जलि देनेके लिये जलकी इच्छा की, किन्तु वहाँ कहीं भी कोई जलाशय नहीं दिखायी दिया। उसी समय उन्हें पक्षिराज गरुड दिखायी दिये। उन्होंने अंशुमान्‌से कहा—'नरश्रेष्ठ! सामान्य जलाञ्जलिसे तुम्हारे चाचाओंका उद्धार नहीं होगा। हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजीको इस पृथ्वीपर लानेका प्रयत्न करो और उन्हींके पवित्र जलसे अपने चाचाओंका तर्पण करो। जिस समय लोकपावनी गङ्गा राखके ढेर बने हुए साठ हजार राजकुमारोंको अपने जलसे तृप्त करेंगी, उसी समय वे उन सबको स्वर्ग पहुँचा देंगी।'
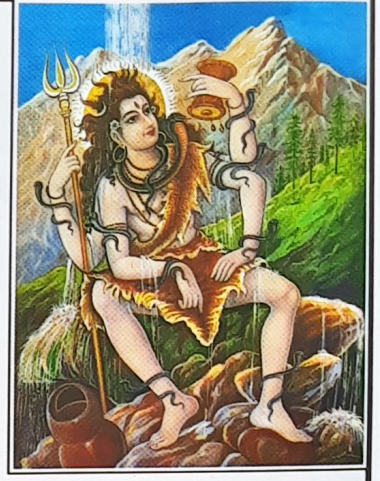
अंशुमान् घोड़ा लेकर लौट आये। बहुत प्रयत्न करनेके बाद भी वे गङ्गाजीको पृथ्वीपर न ला सके। आगे चलकर उनके वंशमें भगीरथ उत्पन्न हुए। वे राज्यका भार अपने मन्त्रियोंको सौंपकर गङ्गाजीको पृथ्वीपर लानेके लिये गोकर्ण-तीर्थमें बड़ी भारी तपस्या करने लगे।

भगीरथकी हजारों वर्षकी कठोर तपस्याके बाद लोकपितामह ब्रह्माने वहाँ आकर कहा—'महाराज भगीरथ! तुम्हारी तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। मैं तुम्हें गङ्गाजीको दे सकता हूँ, परन्तु हिमवान्‌की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजीको धारण करनेकी शक्ति भगवान् शंकरके अतिरिक्त और किसीके भी पास नहीं है। तुम्हें गङ्गाके इस महान् वेगको रोकनेके लिये भगवान् रुद्रकी तपस्या करनी चाहिये।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्माजीके चले जानेपर राजा भगीरथ पृथ्वीपर अँगूठेके अग्रभागको टिकाकर लगातार एक वर्षतक भगवान् शंकरकी कठोर तपस्या करते रहे। वर्षभर बाद सर्वलोकवन्दित उमावल्लभ भगवान् पशुपति प्रकट हुए। उन्होंने भगीरथसे कहा—'नरश्रेष्ठ! मैं तुमपर परम प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। मैं गिरिराजकुमारी गङ्गाको अपने मस्तकपर धारण करके तुम्हारे पूर्वजोंके साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करूँगा।'

भगवान् शंकरकी स्वीकृति मिल जानेके बाद हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गङ्गाजी बड़े ही प्रबल वेगसे आकाशसे भगवान् शंकरके मस्तकपर गिरीं। उस समय गङ्गाजीके मनमें भगवान् शंकरको विजित करनेकी प्रबल इच्छा थी। भगवान् शंकरका विवाह पार्वतीजीसे होनेके कारण रिश्तेमें वे भगवान् शंकरकी बड़ी साली हैं। इन्होंने ही देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरके वीर्यको धारण करके कार्तिकेयको जन्म दिया था। अतः इनके मनमें अहंकारके साथ भगवान् शिवसे परिहासका भाव भी था। गङ्गाजीका विचार था कि मैं अपने प्रबल वेगसे भगवान् शंकरको लिये-दिये पातालमें घुस जाऊँगी।

गङ्गाजीके इस अहंकारको भाँपकर त्रिनेत्रधारी शिवजी कुपित हो उठे और उन्होंने गङ्गाजीको अदृश्य करनेका विचार किया। वैसे भी गङ्गाजी भक्तिकी प्रतीक हैं और भक्तिमें अहंकार सबसे बड़ा बाधक तत्त्व है। भगवान् शिव अपने भक्तोंके अहंकारको नष्ट करनेके लिये कभी-कभी उनपर क्रोध भी करते हैं और उनका क्रोध भी कृपा करनेके लिये ही होता है।

पुण्यशीला गङ्गा जब भगवान् रुद्रके मस्तकपर गिरीं, तब वे उनकी जटाओंके जालमें बुरी तरह उलझ गयीं। लाख प्रयत्न करनेपर भी वे बाहर न निकल सकीं। भगवान् शिवके जटा-जालमें उलझकर बहुत वर्षोंतक उसीमें चक्कर लगाती रहीं।

जब भगीरथने देखा कि गङ्गाजी भगवान् शिवके जटामण्डलमें अदृश्य हो गयीं, तब उन्होंने पुनः भोलेनाथकी प्रसन्नताके लिये तप करना प्रारम्भ कर दिया। उनके तपसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शिवने गङ्गाजीको ले जाकर बिन्दु सरोवरमें छोड़ा। वहाँसे गङ्गाजी सात धाराएँ हो गयीं। इस प्रकार ह्लादिनी, पावनी और नलिनी नामकी धाराएँ पूर्व दिशाकी ओर तथा सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु—ये तीन धाराएँ पश्चिमकी ओर चली गयीं। सातवीं धारा महाराज भगीरथके पीछे-पीछे चली। इस प्रकार आकाशसे भगवान् शंकरके मस्तकपर और वहाँसे पृथ्वीपर आयी गङ्गाजीकी वह जलराशि अद्भुत शोभा पा रही थी। सभी देवता आकाशमें खड़े होकर गङ्गावतरणके इस अद्भुत एवं उत्तम दृश्यको देख रहे थे। गङ्गाका जल कभी नीचे कभी ऊँचे मार्गपर उठता हुआ भूमिपर गिरता था। आकाशसे भगवान् शंकरके मस्तक तथा वहाँसे पृथ्वीपर गिरा हुआ वह निर्मल जल उस समय बड़ा ही शोभा पा रहा था। जो लोग शापभ्रष्ट होकर आकाशसे पृथ्वीपर आये थे, वे गङ्गाजलमें स्नान करके पुनः निष्पाप हो गये। इस प्रकार भगवान् शंकरकी कृपासे गङ्गाका धरतीपर अवतरण हुआ और भगीरथके पितरोंके उद्धारके साथ पतितपावनी गङ्गा संसारवासियोंको प्राप्त हुईं।
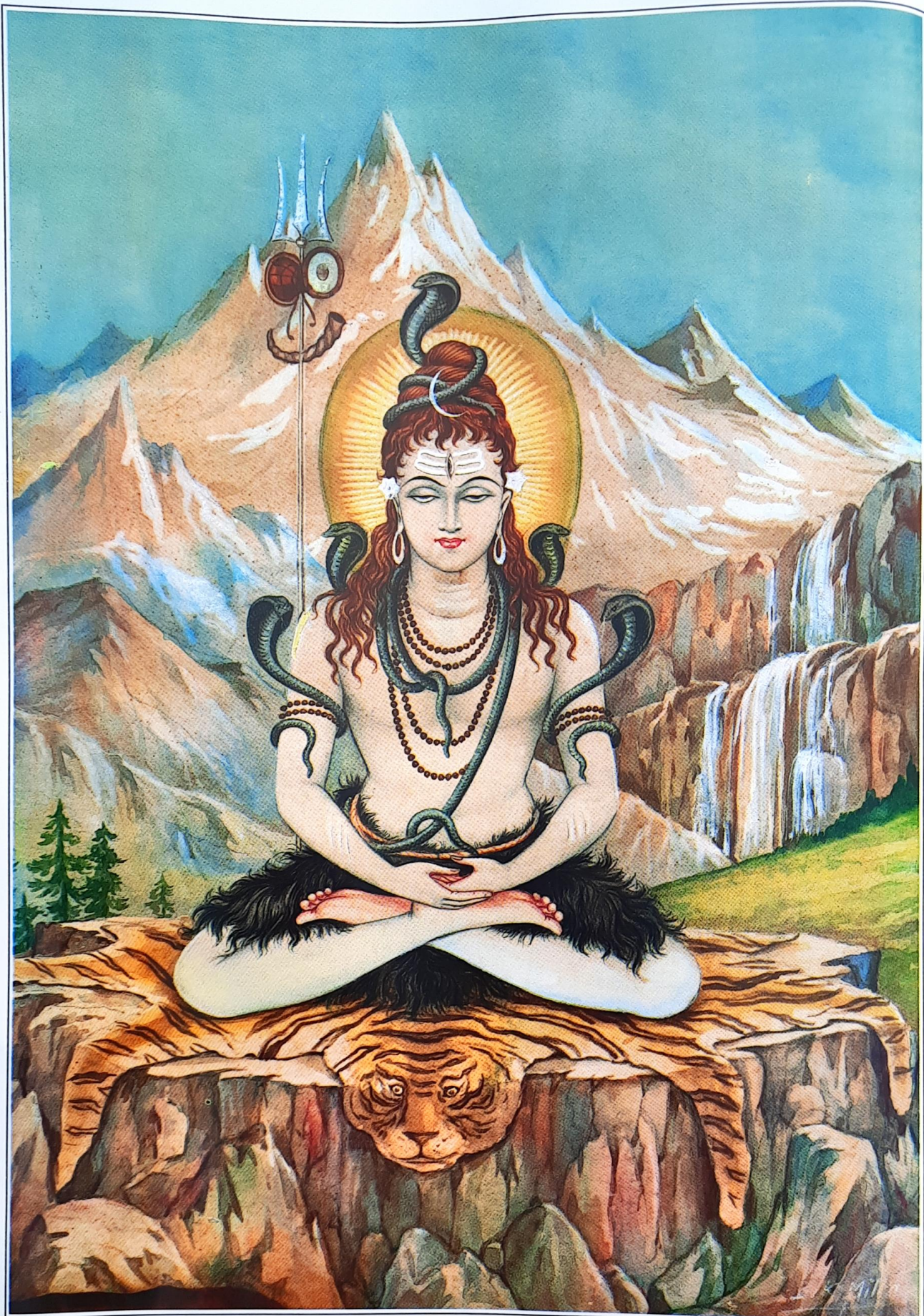
औढरदानी भगवान् शिव

भगवान् शिव और उनका नाम समस्त मङ्गलोंका मूल है। वे कल्याणकी जन्मभूमि, परम कल्याणमय तथा शान्तिके आगार हैं। वेद तथा आगमोंमें भगवान् शिवको विशुद्ध ज्ञानस्वरूप बताया गया है। समस्त विद्याओंके मूल स्थान भी भगवान् शिव ही हैं। उनका यह दिव्यज्ञान स्वतःसम्भूत है। ज्ञान, बल, इच्छा और क्रिया-शक्तिमें भगवान् शिवके समान कोई नहीं है। फिर उनसे अधिक होनेका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वे सबके मूल कारण, रक्षक, पालक तथा नियन्ता होनेके कारण महेश्वर कहे जाते हैं। उनका आदि और अन्त न होनेसे वे अनन्त हैं। वे सभी पवित्रकारी पदार्थोंको भी पवित्र करनेवाले हैं, इसलिये वे समस्त कल्याण और मङ्गलके मूल कारण हैं।

भगवान् शंकर दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, अनन्त राशियोंके अधिपति होनेपर भी भस्म-विभूषण, श्मशानवासी होनेपर भी त्रैलोक्याधिपति, योगिराज होनेपर भी अर्धनारीश्वर, पार्वतीजीके साथ रहनेपर भी कामजित् तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। आशुतोष और औढरदानी होनेके कारण वे शीघ्र प्रसन्न होकर अपने भक्तोंके सम्पूर्ण दोषोंको क्षमा कर देते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञानके साथ अपने-आपको भी दे देते हैं। कृपालुताका इससे बड़ा उदाहरण भला और क्या हो सकता है।

प्रायः सभी पुराणोंमें भगवान् शिवके दिव्य और रमणीय चरित्रोंका चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण विश्वमें शिवमन्दिर, ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्गसे लेकर छोटे-छोटे चबूतरोंपर शिवलिङ्ग स्थापित करके भगवान् शंकरकी सर्वाधिक पूजा उनकी लोकप्रियताका अद्भुत उदाहरण है।

भगवान् शिवका परिवार बहुत बड़ा है। वहाँ सभी द्वन्द्वों और द्वैतोंका अन्त दीखता है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ, चौंसठ योगिनियाँ, षोडश मातृकाएँ, भैरवादि इनके सहचर तथा सहचरी हैं। माता पार्वतीकी सखियोंमें विजया आदि प्रसिद्ध हैं। गणपति-परिवारमें उनकी पत्नी सिद्धि-बुद्धि तथा शुभ और लाभ दो पुत्र हैं। उनका वाहन मूषक है। कार्तिकेयकी पत्नी देवसेना तथा वाहन मयूर है। भगवती पार्वतीका वाहन सिंह है और स्वयं भगवान् शंकर धर्मावतार नन्दीपर आरूढ़ होते हैं। स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव भगवान् शंकरका वाहन बनूँ। इसके लिये उन्होंने दीर्घकालतक तपस्या की। अन्तमें भगवान् शंकरने उनपर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया। इस प्रकार भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमें सदाके लिये भगवान् शिवके वाहन बन गये। 'वृषो हि भगवान् धर्मः।'

बाण, रावण, चण्डी, भृंगी आदि शिवके मुख्य पार्षद हैं। इनके द्वार-रक्षकके रूपमें कीर्तिमुख प्रसिद्ध हैं, इनकी पूजाके बाद ही शिव-मन्दिरमें प्रवेश करके शिवपूजाका विधान है। इससे भगवान् शंकर परम प्रसन्न होते हैं। यद्यपि भगवान् शंकर सर्वत्र व्याप्त हैं तथापि काशी और कैलास इनके मुख्य स्थान हैं। भक्तोंके हृदयमें तो ये सर्वदा निवास करते हैं। इनके मुख्य आयुध त्रिशूल, टंक (छेनी), कृपाण, वज्र, अग्नियुक्त कपाल, सर्प, घण्टा, अंकुश, पाश तथा पिनाक धनुष हैं।

भगवान् शंकरके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। आप भयंकर रुद्ररूप हैं तो भोलानाथ भी हैं। दुष्ट दैत्योंके संहारमें कालरूप हैं तो दीन-दुःखियोंकी सहायता करनेमें दयालुताके समुद्र हैं। जिसने आपको प्रसन्न कर लिया उसको मनमाना वरदान मिला। रावणको अटूट बल दिया। भस्मासुरको सबको भस्म करनेकी शक्ति दी। यदि भगवान् विष्णु मोहिनीरूप धारण करके सामने न आते तो स्वयं भोलानाथ ही संकटग्रस्त हो जाते। आपकी दयाका कोई पार नहीं है। मार्कण्डेयजीको अपनाकर यमदूतोंको भगा दिया। आपका त्याग अनुपम है। अन्य सभी देवता समुद्र-मन्थनसे निकले हुए लक्ष्मी, कामधेनु, कल्पवृक्ष और अमृत ले गये, आप अपने भागका हलाहल पान करके संसारकी रक्षाके लिये नीलकण्ठ बन गये। भगवान् शंकर एकपत्नीव्रतके अनुपम आदर्श हैं। माता सती ही पार्वतीरूपमें आपकी अनन्य पत्नी हैं। इस पदको प्राप्त करनेके लिये इस देवीने जन्म-जन्मान्तरतक घोर तप किया। भूमण्डलके किसी साहित्यमें पति-पत्नीके सम्बन्धका ऐसा ज्वलन्त उदाहरण नहीं है।
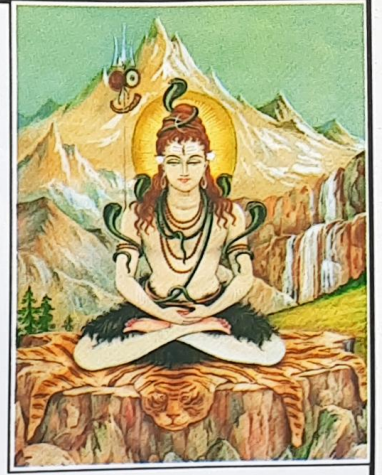
भगवान् शिव योगियोंके भी महायोगी हैं। योगशास्त्रका सम्पूर्ण चमत्कार इन्हींकी अनुपम कीर्ति है। योगियोंकी आयु बढ़ानेके लिये आपने पारद-शास्त्रका आविष्कार किया। इस शास्त्रकी साधनाके द्वारा योगी जब चाहे अपना कायाकल्प करके अपनी आयु सहस्त्रों वर्षतक बढ़ा सकता है। भगवान् शंकर इस योग-विद्या और ज्ञानके आदि आविष्कारक हैं। ये ही संगीत और नृत्यकलाके भी आदि आचार्य हैं। ताण्डव नृत्य करते समय इनके डमरूसे सात स्वरोंका प्रादुर्भाव हुआ। इनका ताण्डव ही नृत्यकलाका प्रारम्भ है। व्याकरणके मूल तत्त्वोंका विकास भी शिवजीकी डमरूध्वनिका ही परिणाम है। इस प्रकार भगवान् शंकर कितनी ही विद्याओं और कलाओंके जन्मदाता और प्रवर्तक हैं।

संस्कृत-साहित्यमें ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है, जिसमें भगवान् शंकरके चरित्रका उल्लेख न हो। ये ही देवोंमें देव महादेव तथा आर्यजातिके आद्य देवता हैं। जहाँ-जहाँ आर्यजातिकी संस्कृतिकी पहुँच हुई है, वहाँ-वहाँ भगवान् शिवकी स्थापना हुई है। इनकी अक्षय कीर्ति, लीला, ज्ञानवत्ता आदिके वर्णनसे सभी शास्त्र और पुराण मण्डित हैं।

लिङ्गरूपसे आपकी उपासनाका तात्पर्य यह है कि शिव, पुरुष लिङ्गरूपसे इस प्रकृतिरूपी संसारमें स्थित है। यही सृष्टिकी उत्पत्तिका मूलरूप है। 'त्रयम्बकं यजामहे' शिव-उपासनाका वेदमन्त्र है। ऐतिहासिक दृष्टिसे सबसे पहले शिव-मन्दिरोंका ही उल्लेख है। जब भगवान् श्रीरामचन्द्रने लङ्कापर चढ़ाई की, तब सबसे पहले 'रामेश्वरम्' के नामसे भगवान् शिवकी स्थापना और पूजा की थी। काशीमें विश्वनाथकी पूजा अत्यन्त प्राचीन है। इस प्रकार भगवान् शंकर आर्यजातिकी सभ्यता और संस्कृतिके पूरे उदाहरण हैं। हिमालय पर्वतपर निवास भौगोलिक संकेत है। तप, योग करना आर्यसंस्कृतिका प्रधान सिद्धान्त है और आध्यात्मिक ज्ञान-उपदेश आर्यसंस्कृतिका प्रधान तत्त्व है।

भगवान् शिवका हरिहरात्मक रूप

एक बार सभी देवता भगवान् विष्णुके पास गये और उन्हें नमस्कार करनेके बाद सम्पूर्ण जगत्के अशान्त होनेका कारण पूछा। देवताओंके प्रश्न करनेपर भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओ! हम तुम्हारे इस प्रश्नका यथोचित उत्तर नहीं दे सकते। हम सभी लोगोंको एक साथ मिलकर भगवान् शंकरके पास चलना चाहिये। वे महान् ज्ञानी हैं। सम्पूर्ण सृष्टिमें होनेवाली किसी भी क्रियासे वे अपरिचित नहीं हैं। इस चराचर जगत्की व्याकुलताका कारण वे ही जानते होंगे।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर इन्द्रादि समस्त देवगण जनार्दनको आगे करके मन्दर पर्वतपर गये। वहाँ जानेपर बहुत प्रयास करनेके बाद भी उन्हें कहीं भी महादेवके दर्शन नहीं हुए। अज्ञानके अन्धकारमें पड़े हुए देवताओंने भगवान् विष्णुसे महादेवका दर्शन न होनेका कारण पूछा। इसपर भगवान् विष्णुने कहा—'क्या आपलोग अपने सामने स्थित महादेवको नहीं देख रहे हैं।'

देवताओंने उत्तर दिया—'हाँ, हमलोग गिरिजापति देवेशको नहीं देख रहे हैं। हमलोग उस कारणको नहीं जानते, जिससे हमारी देखनेकी शक्ति नष्ट हो गयी है।'

भगवान् विष्णुने कहा—'देवताओ! आपलोगोंने महादेवका अपराध किया है। आपलोग पार्वतीजीका गर्भ नष्ट करनेके कारण महापापसे ग्रस्त हो गये हैं। इसलिये शूलपाणि भगवान् महादेवने आपलोगोंके सम्यक् अवबोध और विचारशक्तिको नष्ट कर दिया है। इस कारण आप सब सामने स्थित शंकरको देखकर भी नहीं देख रहे हैं। अतः आप सब अब महादेवके दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये तप्तकृच्छ्र-व्रतद्वारा पावन होकर स्नान करें। उसके बाद आपलोग भगवान् शंकरका सविधि अभिषेक करें। नाना प्रकारके उपचारोंसे भगवान् शिवकी पूजा करें। देवताओ! तप्तकृच्छ्र-व्रतका विधान यह है कि तीन दिन बारह पल गरम जल पिये, तीन दिन आठ पल गरम दूध पिये, तीन दिन छः पल गरम घी पिये और तीन दिन केवल वायु पीकर रहे।'

भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर इन्द्रादि देवताओंने अपनी शुद्धिके लिये एकान्तमें तप्तकृच्छ्र-व्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वे पापमुक्त हो गये। पापसे छूटकर देवताओंने भगवान् विष्णुसे कहा—'जगन्नाथ! अब आप हमें भगवान् शम्भुका दर्शन करायें, जिससे हम उनका अभिषेक कर सकें।' देवताओंकी बात सुनकर मुरारि विष्णुने उन्हें अपने हृदयकमलमें विश्राम करनेवाले भगवान् शंकरके लिङ्गका दर्शन करा दिया। उसके बाद देवताओंने दुग्धादिसे उस अक्षय लिङ्गको स्नान कराया। फिर उन लोगोंने गोरोचन और सुगन्धित चन्दनका लेपनकर बिल्वपत्रों और कमलोंसे भक्तिपूर्वक महादेवकी पूजा की। उसके बाद उन्होंने भगवान् शिवके एक सौ आठ नामोंका जप करके उन्हें प्रणाम किया।

सभी देवता यह विचार करने लगे कि सत्त्वगुणकी अधिकतासे भगवान् विष्णु और तमोगुणकी प्रधानतासे प्रादुर्भूत भगवान् शिवमें एकता किस प्रकार हुई? देवताओंके इस विचारको जानकर भगवान्ने उन्हें अपने हरिहरात्मक रूपका दर्शन कराया। देवताओंने एक ही शरीरमें कानमें सर्पोंके कुण्डल पहने, सिरपर लम्बे बालके जटाजूट बाँधे, गलेमें सर्पोंकी माला धारण किये, हाथमें पिनाक, शूल, आजगव धनुष और खट्वाङ्ग धारण किये। बाघम्बर धारण करनेवाले, त्रिनेत्रधारी वृषध्वज महादेवके साथ कुण्डलधारी, गरुड़ध्वज, हार और पीताम्बर पहने, हाथोंमें चक्र, असि, शार्ङ्गधनुष और शङ्ख लिये भगवान् विष्णुको देखा। इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवताओंने हरि और हरको एक रूप समझकर उनकी स्तुति की।

तदनन्तर देवोंके स्वामी भगवान् विष्णु देवताओंको समान हृदयवाला समझकर, उनको साथ लेकर शीघ्र अपने आश्रम कुरुक्षेत्र गये। वहाँ उन लोगोंने जलके भीतर स्थाणुभूत महादेवको देखा। सभी लोगोंने 'स्थाणवे नमः' कहकर भगवान् शिवको नमस्कार किया। उसके बाद इन्द्रने कहा—'अतिथिप्रिय जगन्नाथ! जगत् अशान्त हो उठा है। आप बाहर निकलकर आइये और हमें वर दीजिये।' देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शिव बाहर आ गये।

देवताओंने उनसे कहा—'महादेव! आप इस महाव्रतको शीघ्र छोड़ दीजिये। आपके तेजसे व्याप्त होकर तीनों लोक क्षुब्ध हो गये हैं।' देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने अपने महाव्रतको त्याग दिया। देवता स्वर्ग चले गये। फिर भी समुद्र और द्वीपोंके साथ पृथ्वीका काँपना बन्द नहीं हुआ। रुद्रने सोचा कि मेरे तपस्यासे विरत हो जानेके बाद भी पृथ्वी क्यों काँप रही है। फिर त्रिशूलधारी भगवान् शिव कुरुक्षेत्रके चारों ओर विचरण करने लगे।

उन्होंने ओघवतीके किनारे तपस्यारत शुक्राचार्यको देखा। देवाधिदेव भगवान् शिवने उनसे कहा—'विप्र! आप जगत्को क्षुब्ध करनेवाला तप क्यों कर रहे हैं? उसे मुझे शीघ्र बताइये।'

शुक्राचार्यने कहा—'देवाधिदेव! आपकी प्रसन्नता पानेके उद्देश्यसे ही मैं यह तप कर रहा हूँ। त्रिनयन! मैं आपकी कृपासे मंगलमयी संजीवनी-विद्याको जानना चाहता हूँ।'

महादेवने कहा—'तपोधन! मैं आपकी तपस्यासे भली-भाँति प्रसन्न हूँ। आप संजीवनी-विद्याको यथार्थरूपसे जान जायँगे।' इस प्रकार वर प्राप्तकर शुक्राचार्य तपस्यासे विरत हो गये। फिर भी सागर, पर्वत, वृक्षादि और पृथ्वीका काँपना बन्द नहीं हुआ। उसके बाद महादेव सप्तसारस्वतमें गये। वहाँ उन्होंने मङ्कण नामके महर्षिको नाचते हुए देखा। वे बालकके समान भावविभोर होकर उछल-उछलकर नाच रहे थे। उसीके कारण पृथ्वी काँप रही थी। महादेवके कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि मुझे तपस्या करते हुए अनेक वर्ष बीत गये। अब मेरे हाथसे घावके कारण शाकरस निकल रहा है। इससे मुझे प्रसन्नता हो रही है और मैं आनन्दमें विभोर होकर नाच रहा हूँ।' भगवान् शंकरने उन्हें नाचनेसे मना करके वरदान दिया। इस प्रकार देवताओंको हरिहरात्मक शिवका दर्शन हुआ और शिव-कृपासे पृथ्वीका काँपना बन्द हो जानेसे जगत्की व्याकुलता शान्त हो गयी।

अर्धनारीश्वर शिव

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालकशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हैं। वे वाम भागके हाथोंमें पाश और लाल कमल धारण किये हैं। उनकी दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल स्थित है। एक ही शरीरमें बायीं ओर भगवती पार्वती और दायीं ओर भगवान् शंकरका स्वरूप है। उनके अंगोंमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हैं, मस्तकके ऊपर बालचन्द्र और मुकुट धारण करनेवाले ऐसे भगवान् अर्धनारीश्वर शिवको मैं प्रणाम करता हूँ।

सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सृष्टि विस्तारको नहीं प्राप्त हुई, तब ब्रह्माजी उस दुःखसे अत्यन्त दुःखी हुए। उसी समय आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टि करो।' उस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया, परन्तु ब्रह्माकी असमर्थता यह थी कि उस समयतक भगवान् महेश्वरद्वारा नारीकुल प्रकट ही नहीं हुआ था। इसलिये ब्रह्माजी विचार करनेके बाद भी मैथुनी सृष्टि न कर सके। ब्रह्माजीने सोचा कि भगवान् शिवकी कृपाके बिना मैथुनी सृष्टि नहीं हो सकती और उनकी कृपा प्राप्त करनेका प्रमुख साधन उनकी तपस्या ही है। ऐसा सोचकर वे भगवान् शिवकी तपस्या करनेके लिये प्रवृत्त हुए। उस समय ब्रह्माजी शिवासहित परमेश्वर शंकरका प्रेमसहित ध्यान करते हुए घोर तप करने लगे।

ब्रह्माके उस तीव्र तपसे शिवजी प्रसन्न हो गये। फिर कष्टहारी शम्भु सच्चिदानन्दकी कामदामूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारीश्वरके रूपमें ब्रह्माके समक्ष प्रकट हुए। उन देवाधिदेव भगवान् शिवको पराशक्ति शिवाके साथ एक ही शरीरमें प्रकट हुए देखकर ब्रह्माने भूमिपर दण्डकी भाँति लेटकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर विश्वकर्मा महेश्वरने परम प्रसन्न होकर मेघकी-सी गम्भीर वाणीमें उनसे कहा—'वत्स ब्रह्मा! मुझे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ पूर्णतया ज्ञात है। इस समय तुमने जो प्रजाओंकी वृद्धिके लिये कठोर तप किया है, उससे मैं परम प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट वर अवश्य प्रदान करूँगा।' इस प्रकार स्वभावसे ही मधुर तथा परम उदार शिवजीने ऐसा कहकर अपने शरीरसे शिवादेवीको पृथक् कर दिया। फिर ब्रह्मा भगवान् शिवसे पृथक् हुई पराशक्तिको प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्माने कहा—'शिवे! सृष्टिके प्रारम्भमें आपके पति देवाधिदेव परमात्मा शम्भुने मेरी सृष्टि की और उन्होंने मुझे सृष्टि-रचनेका आदेश दिया था। शिवे! तब मैंने देवता आदि समस्त प्रजाओंकी मानसिक सृष्टि की, परन्तु बार-बार रचना करनेपर भी उनकी वृद्धि नहीं हो रही है। अतः अब मैं स्त्री-पुरुषके समागमके द्वारा सृष्टिका निर्माण करके प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ, किन्तु अभीतक आपसे अक्षय नारीकुलका प्राकट्य नहीं हुआ है। नारीकुलकी सृष्टि करना मेरी शक्तिके बाहर है। सारी सृष्टियोंका उद्गम-स्थान आपके सिवाय कोई अन्य नहीं है। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आप मुझे नारीकुलकी सृष्टि करनेकी शक्ति प्रदान करें। इसीमें जगत्का कल्याण निहित है। हे वरदेश्वरी! मैं आपके चरणोंमें बार-बार प्रणाम करके आपसे एक और प्रार्थना करता हूँ। आप समस्त जगत्के कल्याणके लिये तथा वृद्धिके लिये मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री होकर अवतार ग्रहण करें।'
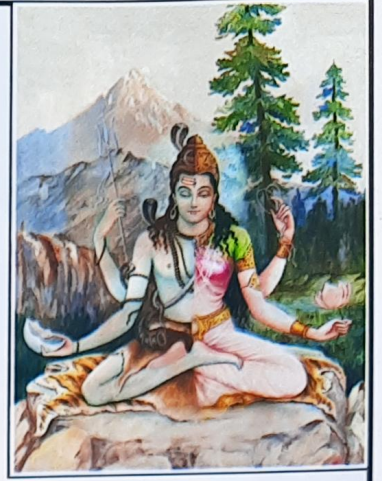
ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करनेपर शिवाने 'तथास्तु' ऐसा ही होगा कहकर उन्हें नारीकुलकी सृष्टि करनेकी शक्ति प्रदान की। उसके बाद उस जगन्माताने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान प्रभावाली एक शक्तिकी रचना की। उस शक्तिको देखकर कृपासागर भगवान् शंकर जगदम्बासे इस प्रकार बोले।

शिवजीने कहा—'देवि! ब्रह्माने कठोर तपस्यासे तुम्हारी आराधना की है। अतः तुम उनपर प्रसन्न हो जाओ और उनका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करो।'

भगवान् शंकरके आदेशको शिवादेवीने सिर झुकाकर स्वीकार किया और ब्रह्माके कथनानुसार दक्षकी पुत्री होनेका वचन दिया। इस प्रकार शिवादेवी ब्रह्माको सृष्टि-रचनाकी अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। तदनन्तर भगवान् शंकर भी तुरन्त अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस लोकमें स्त्री-भागकी कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ हुई।

भगवान् अर्धनारीश्वरसे मैथुनी सृष्टिकी शक्ति प्राप्तकर जब ब्रह्माजीने सृष्टिकी कल्पना की, तब उनका शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया। आधे शरीरसे एक परम रूपवती स्त्री प्रकट हुई और आधेसे एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वह स्वायम्भुव मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ और स्त्री शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुई। स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साधक हुए तथा शतरूपा योगिनी और तपस्विनी हुईं। मनुने वैवाहिक विधिसे अत्यन्त सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजनित सृष्टि उत्पन्न करने लगे। उन्होंने शतरूपाके द्वारा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं। कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति। आकूतिका विवाह प्रजापति रुचि, देवहूतिका कर्दम और प्रसूतिका विवाह प्रजापति दक्षके साथ हुआ। कल्पभेदसे दक्षकी साठ कन्याएँ बतायी गयी हैं। ब्रह्माजीको दिये गये वरदानके अनुसार भगवती शिवाने इन्हीं दक्षकी कन्या होकर अवतार ग्रहण किया। इस प्रकार भगवान् अर्धनारीश्वरकी कृपासे मैथुनी सृष्टिकी परम्परा चल पड़ी।

पञ्चमुख तथा पञ्चमूर्ति शिव

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजपावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-

स्त्र्यक्षैरञ्जितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।

शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्

पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

'जिन भगवान् शंकरके ऊपरकी ओर गजमुक्ताके समान किंचित् श्वेत-पीत वर्ण, पूर्वकी ओर सुवर्णके समान पीतवर्ण, दक्षिणकी ओर सजल मेघके समान सघन नीलवर्ण, पश्चिमकी ओर स्फटिकके समान शुभ्र उज्ज्वल वर्ण तथा उत्तरकी ओर जपापुष्प या प्रवालके समान रक्तवर्णके पाँच मुख हैं। जिनके शरीरकी प्रभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंके समान है और जिनके दस हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टंक (छेनी), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अङ्कुश, पाश तथा अभयमुद्रा हैं। ऐसे भव्य, उज्ज्वल भगवान् शिवका मैं ध्यान करता हूँ।'

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं—ये ही उनके पाँच मुख कहे जाते हैं। उनकी प्रथम मूर्ति क्रीड़ा, दूसरी तपस्या, तीसरी लोकसंहार, चौथी अहंकारकी अधिष्ठात्री है। पाँचवीं ज्ञान प्रधान होनेके कारण सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न रखती है।

भगवान् शंकर ब्रह्मासे कहते हैं कि मेरे कर्तव्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम्हें उसके विषयमें बता रहा हूँ। सृष्टि, पालन, तिरोभाव और अनुग्रह—ये मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्य सिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो आरम्भ है, उसीको सर्ग या सृष्टि कहते हैं। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी स्थिति है। उसका विनाश ही संहार है। प्राणोंके उत्क्रमणको तिरोभाव कहते हैं। इन सबसे छुटकारा मिल जाना मेरा अनुग्रह है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पंचभूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें, तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है। जलसे सबकी वृद्धि और जीवन-रक्षा होती है। आग सबको भस्म कर देती है। वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है। विद्वान् पुरुषको यह विषय इसी रूपमें जानना चाहिये। इन पाँचों कृत्योंका वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। तुमने और विष्णुने मेरी तपस्या करके मुझसे सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। इस प्रकार मेरी विभूतिरूप रुद्रने मुझसे संहार और तिरोभावरूपी कृत्य प्राप्त किये हैं। परन्तु मेरा अनुग्रह नामक कृत्य मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं प्राप्त कर सकता। रुद्रको मैंने अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन आदिमें मेरे ही समान हैं। पूर्वकालमें मैंने अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया था, जो ओंकारके नामसे प्रसिद्ध है। वह परम मङ्गलकारी मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका स्मरण करनेसे मेरा ही स्मरण होता है।

मेरे उत्तरपूर्वी मुखसे अकारका, पश्चिमके मुखसे उकारका, दक्षिणके मुखसे मकारका, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दुका तथा मध्यवर्ती मुखसे नादका प्राकट्य हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त ओंकारका विस्तार हुआ। इन सभी अवयवोंसे युक्त होकर वह प्रणव 'ॐ' नामक एक अक्षर हो गया। यह सम्पूर्ण नाम-रूपात्मक जगत्, वेद, स्त्री-पुरुष वर्ग, दोनों कुल इस प्रणव मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और मकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया। इसीसे पञ्चाक्षर मन्त्रकी उत्पत्ति हुई। जो मेरे सकल स्वरूपका बोधक है। 'ॐ नमः शिवाय' पञ्चाक्षर मन्त्र है। उसीसे त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए। उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले। इस प्रणव पञ्चाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इसके द्वारा भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार गुरुवर महादेवने ब्रह्मा और विष्णुको धीरे-धीरे उच्चारण करके अपने पाँच मुखोंसे अपने उत्तम मन्त्रका उपदेश किया। मन्त्रमें बतायी हुई विधिका पालन करते हुए उन्होंने अपने दोनों शिष्योंको मन्त्र दीक्षा दी और अपने पाँचों मुखोंका रहस्य बताया।

ब्रह्मा और विष्णुने भगवान् महेश्वरसे कृतकृत्य होकर कहा—'प्रभो आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। पाँच मुखवाले आप परमेश्वरको नमस्कार है। पञ्च ब्रह्मस्वरूपवाले और पाँच कृत्यवाले आपको नमस्कार है। आप सबकी आत्मा और ब्रह्म हैं। आप सद्गुरु और शम्भु हैं। आपको नमस्कार है।' इस प्रकार गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने भगवान् पञ्चमुख शिवके चरणोंमें प्रणाम किया।

महामृत्युञ्जय

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैराप्लावयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलये द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतघटं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजगतं नवेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे॥

भगवान् मृत्युञ्जय अपने ऊपरके दो हाथोंमें स्थित दो कलशोंसे सिरको अमृत जलसे सींच रहे हैं, अपने दो हाथोंमें क्रमशः मृगमुद्रा और रुद्राक्षकी माला धारण किये हैं, दो हाथोंमें अमृत-कलश लिये हैं। दो अन्य हाथोंसे अमृत-कलशको ढके हैं। इस प्रकार आठ हाथोंसे युक्त, कैलास पर्वतपर स्थित, स्वच्छ कमलपर विराजमान, ललाटपर बालचन्द्रका मुकुट धारण किये, त्रिनेत्र, मृत्युञ्जय महादेवका मैं ध्यान करता हूँ।

'आज आप बहुत दुःखी और उदास दीख रहे हैं।' महामुनि मृगशृङ्गके पौत्र श्रीमार्कण्डेयने अपने पूज्य पिताको चिन्तित देखकर अत्यन्त विनम्रतासे कहा। 'इसका क्या कारण है? आपको चिन्तित देखकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।'

'बेटा! महामहिम मृकण्डुने दुःखी मनसे श्रीमार्कण्डेयजीके मुखकी ओर देखते हुए अतिशय स्नेहसे बताया। 'तुम्हारी माता मरुद्वतीको कोई संतान न होनेसे मैंने उसके साथ तपस्या और नियमोंका पालन करते हुए पिनाकधारी शिवको प्रसन्न किया। आशुतोषने प्रकट होकर मुझे पुत्रप्राप्तिका वर दिया, किन्तु तुम्हारी आयु मात्र सोलह वर्षकी दी। शशाङ्कशेखर अन्तर्धान हो गये। कुछ समयके अनन्तर तुम्हारा जन्म हुआ। भोलेनाथके वरप्राप्त पुत्र होनेसे तुममें अद्भुत गुण विद्यमान हैं। तुमसे हम दम्पति अत्यन्त सुखका अनुभव करते हैं, अपनेको गौरवान्वित समझते हैं।' कुछ रुककर कातर स्वरमें श्रीमृकण्डु मुनिने पुनः कहा—'अब तुम्हारा सोलहवाँ वर्ष समाप्त हो चला है।'

'आप मेरे लिये चिन्ता न करें।' श्रीमार्कण्डेयने अत्यन्त गम्भीरतासे पिताको आश्वस्त करनेके लिये विनम्रताके साथ कहा। 'भगवान् आशुतोष कल्याणस्वरूप एवं अभीष्ट फलदाता हैं। मैं उनके मङ्गलमय चरणोंका आश्रय लेकर और उनकी उपासना करके अमरत्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगा।'

श्रीमार्कण्डेयजी माता-पिताके चरणोंकी धूलि मस्तकपर रख भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे और वहाँ उन्होंने अपने ही नामपर (मार्कण्डेयेश्वर) शिवलिङ्गकी स्थापना की तथा त्रिकाल-स्नान करके बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे मृत्युञ्जयस्तोत्रके द्वारा भगवान् मृत्युञ्जयकी उपासना करने लगे। भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। उक्त स्तोत्रसे एक ही दिनमें प्रसन्न हो गये। श्रीमार्कण्डेय पार्वतीश्वरपर समर्पित हो गये। मृत्युके दिन श्रीमार्कण्डेय अपने आराध्यकी पूजा करके स्तोत्र-पाठ करना ही चाहते थे कि चौंक गये। उनके कोमल कण्ठमें कठोर पाश पड़ गया। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा तो सम्मुख भयानक काल खड़े थे।

'महामते काल!' श्रीमार्कण्डेयने निवेदन किया। 'मैं अपने प्राणप्रिय मृत्युञ्जयस्तोत्रका पाठ कर लूँ, इतना अवसर आप मुझे दे दें।'

'काल किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता, ब्रह्मन्!' कालने बड़े रोषसे कहा। 'तुम्हारे लिये भी समय नहीं है।'

'आह!' कालने नेत्र लालकर श्रीमार्कण्डेयका प्राण हरण करनेके लिये पाश खींचना ही चाहा कि वे दूर जा गिरे। पीड़ासे छटपटाने एवं भयसे काँपने लगे। उक्त शिवलिङ्गसे साक्षात् भूतभावन भगवान् शंकरने प्रकट होकर अत्यन्त क्रोधसे कालके वक्षमें कठोर पदाघात किया था।

कालकी दुर्दशा एवं अपने आराध्यका अनुपम रूप-लावण्य देखकर श्रीमार्कण्डेयकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वे उनकी अवर्णनीय सौन्दर्यराशिको देखते हुए स्तुति करने लगे—

रत्नसानुशरासनं रजताद्रिशृङ्गनिकेतनं शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युतानलसायकम्।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदशालयैरभिवन्दितं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
पञ्चपादपपुष्पगन्धिपदाम्बुजद्वयशोभितं भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम्।
भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशिनं भवमव्ययं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम्।
देवसिद्धतरङ्गिणीकरसिक्तशीतजटाधरं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
कुण्डलीकृतकुण्डलीश्वरकुण्डलं वृषवाहनं नारदादिमुनीश्वरस्तुतवैभवं भुवनेश्वरम्।
अन्धकान्तकमाश्रितामरपादपं शमनान्तकं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
यक्षराजसखं भगाक्षिहरं भुजङ्गविभूषणं शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम्।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं दक्षयज्ञविनाशिनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम्।
भुक्तिमुक्तिफलप्रदं निखिलाघसंघनिबर्हणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
भक्तवत्सलमर्चतां निधिमक्षयं हरिदम्बरं सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनूपमम्।
भूमिवारिनभोहुताशनसोमपालितस्वाकृतिं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं संहरन्तमथ प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम्।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमावृतं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः॥
रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
कालकण्ठं कलामूर्त्तिं कालाग्निं कालनाशनम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निरुपद्रवम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशमृषभध्वजम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
अनन्तमव्ययं शान्तमक्षमालाधरं हरम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
आनन्दं परमं नित्यं कैवल्यपदकारणम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्। नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति॥

(पद्मपु०, उत्तर० २३७। ७५—९०)

श्रीमार्कण्डेयजीकी इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवाधिदेव महादेवजीने उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया।